संत श्री आशारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
१ जून २०१२
वर्ष : २१ अंक : १२
(निरंतर अंक : २३४)

गुरुपूर्णिमा विशेषांक
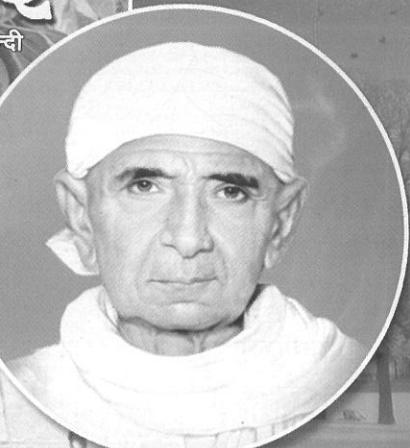
पूज्य बापूजी के सद्गुरु
स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज
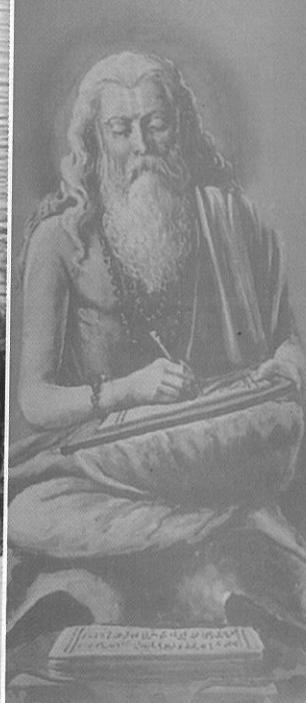
महर्षि वेदव्यासजी

पूज्य संत श्री आशारामजी बापू

ऐसे हैं मेरे सद्गुरु कि जिनके आनंद के एक अंश से सम्पूर्ण विश्व आनंदवान है, जिनकी चेतना ने जड़-चेतन समस्त जगत को ढाँप रखा है। जीव को शिवत्व में जगानेवाले व्यासस्वरूप सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में मधुमय विश्राम !

प्रेम का छलकता सागर
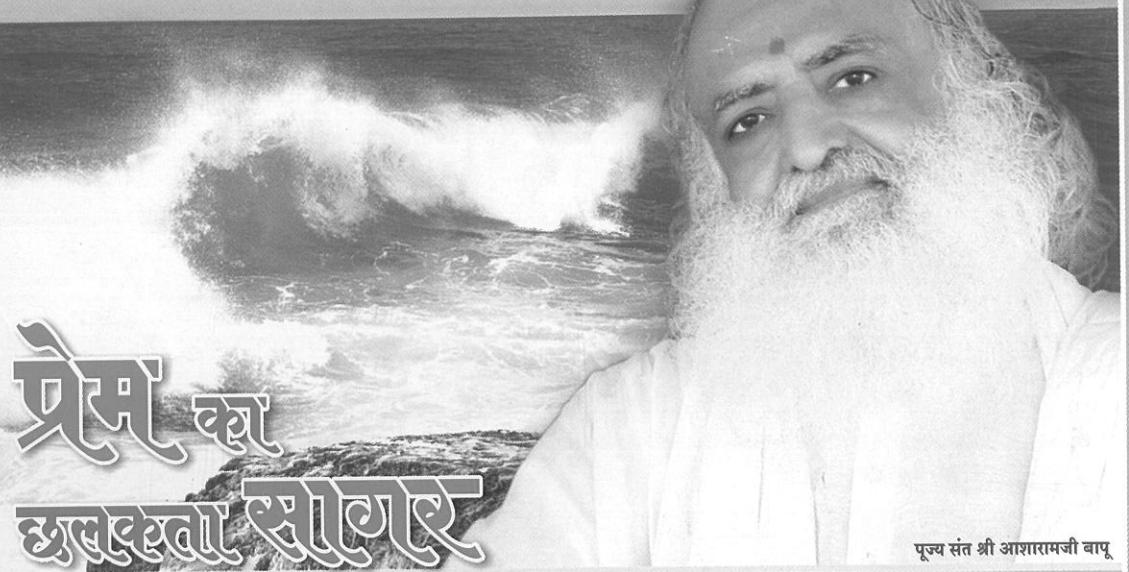
पूज्य संत श्री आशारामजी बापू

वह क्या है जो गुरु और शिष्य, माँ व बालक, भक्त व भगवान को आपस में जोड़ता है ? वह है शुद्ध प्रेम ! प्रेम ईश्वर का स्वभाव है और जीव की माँग है। ईश्वर अपने प्रेमस्वभाव के वशीभूत होकर जीवमात्र को प्रेम, आनंद, माधुर्य प्रदान करना चाहता है। ऐसे में वह उनके बीच अवतरित होता है नित्य अवतारस्वरूप महापुरुषों के रूप में तथा सुलभ करा देता है अपने स्वभाव और जीव की माँग के सम्मिलन का दुर्लभ अवसर।

पूज्य संत श्री आशारामजी बापू ऐसे ही नित्य अवतारस्वरूप महापुरुष हैं, जिनके हृदय में प्रेम का अथाह सागर हिलोरें ले रहा है। नित्य प्रेम की वर्षा करनेवाले बापूजी के सत्संग-सान्निध्य में जो आ जाता है, वह उनके प्रेम को भी महसूस करता है। उनका प्रेम कभी माँ बनकर उँगली पकड़ के जीवन-पथ पर चलना सिखाता है तो कभी पिता बनकर जीवन को नियंत्रित-अनुशासित करता है। कभी मित्र बनकर बाँह पकड़ लेता है तो कभी बंधु बनकर सुरक्षा-कवच प्रदान करता है। कभी गुरु बनकर मार्गदर्शन करता है और पग-पग पर प्रेरणा व सामर्थ्य देता है तो कभी जोगी बनकर आनंदित-उल्लसित करनेवाले नये-नये रूप धारण करता है। इस प्रकार बापूजी में प्रेम की पूर्णता पाकर व्यक्ति कह उठता है :

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

पूज्य बापूजी कहते हैं : "प्रेम का बाप विश्वास है। विश्वास का मूल है सच्चाई। सच्चाई के मूल में हितभाव होना जरूरी है। हमारे हृदय में एक-दूसरे की भलाई के लिए सच्ची भावना होती है तो विश्वास पक्का होता जाता है और उतना ही अधिक प्रेमरस प्रकट होता है।"

मनुष्य में बुरी के साथ भली वृत्तियाँ भी रहती हैं जो समय पाकर जाग उठती हैं। जैसे उचित खाद-पानी पाकर बीज पनप उठता है, वैसे ही संत का प्रेम पाकर मनुष्य की सद्वृत्तियाँ लहलहा उठती हैं। उनका दर्शन-सान्निध्य पाकर एवं अमृतवर्षी दृष्टि पड़ते ही पापी-से-पापी व्यक्ति भी सुधरने लगता है।

(शेष पृष्ठ २८ पर)
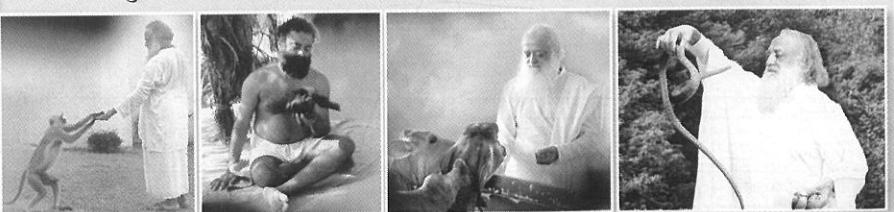
ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, तेलुगू, कन्नड, अंग्रेजी, सिंधी, सिंधी (देवनागरी) व बंगाली भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : २१ अंक : १२
भाषा : हिन्दी (निरंतर अंक : २३४)
१ जून २०१२ मूल्य : रु. ६-००
ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. २०६९

स्वामी : संत श्री आशारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : संत श्री आशारामजी आश्रम, मोटेरा, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद - ३८०००५ (गुजरात).
मुद्रण स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चरर्स, कुंजा मतरालियों, पौंटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.) - १७३०२५.

सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

अवधि	हिन्दी व अन्य भाषाएँ	अंग्रेजी भाषा
वार्षिक	रु. ६०/-	रु. ७०/-
द्विवार्षिक	रु. १००/-	रु. १३५/-
पंचवार्षिक	रु. २२५/-	रु. ३२५/-
आजीवन	रु. ५००/-	----

विदेशों में (सभी भाषाएँ)

अवधि	सार्क देश	अन्य देश
वार्षिक	रु. ३००/-	US $ 20
द्विवार्षिक	रु. ६००/-	US $ 40
पंचवार्षिक	रु. १५००/-	US $ 80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट ('ऋषि प्रसाद' के नाम अहमदाबाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

सम्पर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', संत श्री आशारामजी आश्रम, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुज.).
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org
: www.rishiprasad.org

इस अंक में...

विभिन्न टी.वी. चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

A2Z NEWS — रोज प्रातः ३, ५-३०, ७-३० बजे, रात्रि १० बजे तथा दोपहर २-४० (केवल मंगल, गुरु, शनि)

आस्था — रोज सुबह ९-४० बजे

संस्कार — रोज दोपहर २-०० बजे

care WORLD — रोज सुबह ७-०० बजे

सत्संग टी.वी. — रोज रात्रि १०-०० बजे

वरदान — रोज सुबह ८-४० बजे

अध्यात्म टी.वी. — रोज सुबह ९-०० बजे

MAGIK TV — रोज सुबह ६-०० बजे व शाम ६-३० बजे

मंगलमय — २४ घंटे प्रसारण

सजीव प्रसारण के समय नित्य के कार्यक्रम प्रसारित नहीं होते।

✻ 'A2Z चैनल' डिश टी.वी. (चैनल नं. ५७९) तथा बिग टी.वी. (चैनल नं. ४२५) पर भी उपलब्ध है।
✻ 'संस्कार चैनल' डिश टी.वी. (चैनल नं. ११९३) तथा बिग टी.वी. (चैनल नं. ६५१) पर भी उपलब्ध है।
✻ 'मंगलमय चैनल' इंटरनेट पर www.ashram.org/live लिंक पर उपलब्ध है।

महिमावंत दृष्टि

– पूज्य बापूजी

ऋषि कहते हैं :

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।

जो ब्रह्मा की नाईं हमारे हृदय में उच्च संस्कार भरते हैं, विष्णु की नाईं उनका पोषण करते हैं और शिवजी की नाईं हमारे कुसंस्कारों एवं जीवभाव का नाश करते हैं, वे हमारे गुरु हैं।' फिर भी ऋषियों को पूर्ण संतोष नहीं हुआ, अतः उन्होंने आगे कहा :

'गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ब्रह्माजी ने तो सृष्टि की रचना की, विष्णुजी ने पालन-पोषण किया और शिवजी संहार करके नयी सृष्टि की व्यवस्था करते हैं लेकिन गुरुदेव तो इन सारे चक्करों से छुड़ानेवाले परब्रह्मस्वरूप हैं, ऐसे गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।'

पुष्पों के इर्दगिर्द मँडराने से क्या फायदा होता है किसी भ्रमर से पूछो। जल में क्या मजा आता है किसी जलचर से पूछो। ऐसे ही संत-महापुरुषों के सान्निध्य से क्या लाभ होता है यह किसी सत्शिष्य से ही पूछो।

सम्राट के साथ राज्य करना भी बुरा है,
न जाने कब रुला दे !
फकीरों के साथ भीख माँगकर रहना भी अच्छा है,
न जाने कब मिला दें !

आज दुनिया में जो थोड़ी-बहुत मानवता, प्रसन्नता, उदारता, स्नेह, सदाचार दिख रहा है, वह ऐसे सद्गुरुओं एवं सत्शिष्यों के कारण ही है।

भक्त लोग हनुमानजी से प्रार्थना करते हैं :

जय जय जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करहुँ गुरुदेव की नाईं॥

यह देवताओं जैसी कृपा की याचना नहीं है, गुरुदेव जैसी कृपा करते हैं वैसी कृपा की याचना है। गुरुदेव कैसी कृपा करते हैं ? जीव शिव से एक हो जाय – ऐसी गुरुदेव की निगाहें होती हैं। आनंदस्वरूप गुरुदेव अपने शिष्य को भी उसी आनंद का दान देना चाहते हैं जो आनंद किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति से आबद्ध नहीं है, जो आनंद कहीं आता-जाता नहीं है।

ऐसे सद्गुरुओं के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने का जो दिन है – वह है गुरुपूर्णिमा, व्यासपूर्णिमा।

संसारी मित्रों एवं संबंधियों से बहुत-बहुत मेहनत के बाद भी वह चीज नहीं मिलती जो ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा मिलती है। यदि हम उसका कुछ-न-कुछ बदला चुकायें नहीं तो हम कृतघ्न हो जायेंगे। हम कृतघ्नता के दोष से बचें और कुछ-न-कुछ अभिव्यक्त करें। उनसे जो मिला है उसका बदला तो नहीं चुका सकते हैं, फिर भी कुछ-न-कुछ भाव अभिव्यक्त करते हैं और यह भाव अभिव्यक्त करने का जो दिन है, उसे 'व्यासपूर्णिमा' कहा जाता है।

ऐसा ही कोई दिन था जब हृदय भावों से भर गया और प्रेम उमड़ पड़ा, गुरुजी के पैर पकड़कर मैंने कहा : "गुरुजी ! मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिये।"

गुरुजी : "सेवा करेगा ? जो कहूँगा वह करेगा ?"

मैंने कहा : "हाँ गुरुजी ! आज्ञा कीजिये, आज्ञा कीजिये।"

गुरुजी : "जो माँगूँ वह देगा ?"

मैंने कहा : "हाँ गुरुजी ! जरूर दूँगा।"

गुरुजी शांत हो गये। कुछ क्षणों बाद गुरुजी ने पुनः कहा : "जो माँगूँ वह देगा ?"

मैंने कहा : "हाँ गुरुजी !"

गुरुजी : "तू आत्मज्ञान पाकर मुक्त हो जा और दूसरों को भी मुक्त करते रहना, इतना ही दे दे।"

सद्गुरु की कितनी महिमावंत दृष्टि होती है ! हम लोगों को मन में होता है कि 'गुरुजी शायद यह न माँग लें, वह न माँग लें...' अरे, सब कुछ देने के

बाद भी अगर सद्गुरु-तत्त्व हजम होता है तो सौदा सस्ता है। न जाने कितनी बार किन-किन चीजों के लिए हमारा सिर चला गया ! एक बार और सही। ...और वे सद्गुरु यह पंचभौतिक सिर नहीं लेते, वे तो हमारी मान्यताओं का, कल्पनाओं का सिर ही ले लेते हैं ताकि हम भी परमात्मा के दिव्य आनंद का, प्रेम का, माधुर्य का अनुभव कर सकें।

गुरुजी ने नाम रखा है - 'आशाराम'। हम आपकी हजार-हजार बातें इसी आस से मानते आये हैं, हजार-हजार अँगड़ाइयाँ इसी आस से सह रहे हैं कि आप भी कभी-न-कभी हमारी बात मान लोगे। और मेरी बात यही है कि **तत्त्वमसि** - 'तुम वही हो।' सदैव रहनेवाला तो एक चैतन्य आत्मा ही है। वही तुम्हारा अपना-आपा है, उसीमें जाग जाओ। मेरी यह बात मानने के लिए तुम भी राजी हो जाओ।

बाहर से देखो तो लगेगा कि 'आहाहा... बापूजी को कितनी मौज है ! कितनी फूलमालाएँ ! लाखों लोगों के सिर झुक रहे हैं... हजारों-हजारों मिठाइयाँ आ रही हैं... बापूजी को तो मौज होगी !'

ना-ना... इन चीजों के लिए हम बापूजी नहीं हुए हैं, इन चीजों के लिए हम हिमालय का एकांत छोड़कर बस्ती में नहीं आये हैं। फिर भी तुम्हारा दिल रखने के लिए... तुमको जो आनंद हुआ है, जो लाभ हुआ है उसकी अभिव्यक्ति तुम करते हो, जो कुछ तुम देते हो, वह देते-देते तुम अपना 'अहं' भी दे डालो इस आशा से हम तुम्हारे फल-फूल आदि स्वीकार करते हैं।

तुम गुरुद्वार पर आते हो तो गुरु की बात भी तो माननी पड़ेगी। गुरु की बात यही है कि तुम्हारी जो जातपाँत है वह हमको दे दो, तुम फलाने नाम के भाई या माई हो वह दे दो और मेरे गुरुदेव का प्रसाद 'ब्रह्मभाव' तुम ले लो। फिर देखो, तुम विश्वनियंता के साथ एकाकार होते हो कि नहीं।

जिसको सच्ची प्यास होती है वह प्याऊ खोज ही लेता है, फिर उसके लिए मजहब, मत-पंथ, वाद-सम्प्रदाय नहीं बचता है। प्यासे को पानी चाहिए। ऐसे ही यदि तुम्हें परमात्मा की प्यास है और तुम जिस मजहब, मत-पंथ में हो, उसमें यदि प्यास नहीं बुझती है तो उस बाड़े को तोड़कर किन्हीं ब्रह्मज्ञानी महापुरुष तक पहुँच जाओ। शर्त यही है कि प्यास ईमानदारीपूर्ण होनी चाहिए, ईमानदारीपूर्ण पुकार होनी चाहिए।

तुम्हें जितनी प्यास होगी, काम उतना जल्दी होगा। यदि प्यास नहीं होगी तो प्यास जगाने के लिए संतों को परिश्रम करना पड़ेगा और संतों का परिश्रम तुम्हारी प्यास जगाने में हो, इसकी अपेक्षा जगी हुई प्यास को तृप्ति प्रदान करने में हो तो काम जल्दी होगा। इसीलिए तुम अपने भीतर झाँक-झाँककर अपनी प्यास जगाओ ताकि वे ज्ञानामृत पिलाने का काम जल्दी से शुरू कर दें। वक्त बीता जा रहा है। न जाने कब, कहाँ, कौन चल दे कोई पता नहीं।

तुमको शायद लगता होगा कि तुम्हारी उम्र अभी दस साल और शेष है लेकिन मुझे पता नहीं कि कल के दिन मैं जिऊँगा कि नहीं। मुझे इस देह का भरोसा नहीं है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस देह के द्वारा गुरु का कार्य जितना हो जाय, अच्छा है। गुरु का प्रसाद जितना बँट जाय, अच्छा है और मैं बाँटने को तत्पर भी रहता हूँ। रात्रि को साढ़े बारह-एक बजे तक भी आप लोगों के बीच होता हूँ। सुबह तीन-चार बजे भी बाहर निकलता हूँ, घूमता हूँ। तुम सोचते होगे कि 'बापू थक गये हैं।' ना, मैं नहीं थकता हूँ। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे अंदर कुछ जगमगा रहा है। मैं निहारता हूँ कि तुम्हारे अंदर ईश्वरीय नूर झलक रहा है। उसको देखकर ही मेरी थकान उतर जाती है। फिर भी कभी थकान लगती है तो आत्मा में गोता मार लेता हूँ। फिर तुमको श्रद्धा और तत्परता से युक्त पाता हूँ तो मैं ताजा हो जाता हूँ। कभी सुबह सात बजे से रात्रि के बारह-एक बजे तक तुम्हारे बीच होता हूँ और ताजे-का-ताजा दिखता हूँ... केवल इसी आशा से कि ताजे-में-ताजा जो परमात्मा है, जिसको कभी थकान नहीं लगती है, उस चैतन्यस्वरूप आत्मा में तुम भी जाग जाओ। ❑

कैसा करुणावान हृदय !

(पूज्य बापूजी की पावन अमृतवाणी)

ब्रह्माजी के मानसपुत्र ऋभु मुनि जन्मजात ज्ञातज्ञेय थे, फिर भी वैदिक मर्यादा का पालन करने के लिए अपने बड़े भाई सनत्सुजात से दीक्षित हो गये एवं अपने आत्मानंद में परितृप्त रहने लगे । ऋभु मुनि ऐसे विलक्षण परमहंस कोटि के साधु हुए कि उनके शरीर पर कौपीनमात्र था । उनकी देह ही उनका आश्रम थी, अन्य कोई आश्रम उन्होंने नहीं बनाया, इतने विरक्त महात्मा थे । पूरा विश्व अपने आत्मा का ही विलास है, ऐसा समझकर वे सर्वत्र विचरते रहते थे ।

एक बार विचरण करते-करते वे पुलस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे । पुलस्त्यजी का पुत्र निदाघ वेदाध्ययन कर रहा था । उसकी बुद्धि कुछ गुणग्राही थी । उसने देखा कि अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित कोई आत्मारामी संत पधारे हैं । उठकर उसने ऋभु मुनि का अभिवादन किया । ऋभु मुनि ने उसका आतिथ्य स्वीकार किया ।

जैसे रहूगण राजा पहचान गये थे कि जड़भरत आत्मारामी संत हैं, परीक्षित और अन्य ऋषि पहचान गये थे कि शुकदेवजी आत्मवेत्ता महापुरुष हैं, ऐसे ही आश्रम में रहते-रहते निदाघ इतना पवित्र हो गया था कि उसने भी पहचान लिया कि ऋभु मुनि आत्मज्ञानी महापुरुष हैं । आत्मवेत्ता ऋभु मुनि को पहचानते ही उसका हृदय ब्रह्मभाव से पावन होने लगा । उसे हुआ कि 'मैं अपने पिता के आश्रम में रहता हूँ इसलिए पिता-पुत्र का संबंध होने के कारण कहीं मेरी आध्यात्मिक यात्रा अधूरी न रह जाय ।' उसने ऋभु मुनि के श्रीचरणों में दंडवत् प्रणाम किया । ऋभु मुनि को भी पता चल गया कि यह अधिकारी है ।

जब ऋभु मुनि चलने को उद्यत हुए तो निदाघ साथ में चल पड़ा । एकांत अरण्य से गुजरते हुए दोनों किसी सरिता के किनारे कुछ दिन रहे । गुरु-शिष्य कंदमूल, फल का भोजन करते, आत्मा-परमात्मा की चर्चा करते । सेवा में निदाघ की तत्परता एवं त्याग देखकर ऋभु मुनि ने उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया ।

कुछ समय के पश्चात् ऋभु मुनि को पता चला कि निदाघ ब्रह्मज्ञान का श्रवण एवं साधना तो करता है किंतु इसकी वासना अभी पूर्ण रूप से मिटी नहीं है । अतः उन्होंने निदाघ को आज्ञा दी : ''बेटा ! अब गृहस्थ-धर्म का पालन करो और गृहस्थी में रहते हुए मेरे दिये ज्ञान का खूब मनन-निदिध्यासन करके अपने मूल स्वभाव में जाग जाओ ।''

गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर निदाघ अपने पिता के पास आया । पिता ने उसका विवाह कर दिया । इसके पश्चात् निदाघ देविका नदी के तट पर वीरनगर के पास अपना आश्रम बनाकर निवास करने लगा । वर्ष पर वर्ष बीतने लगे ।

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष जिसका हाथ पकड़ते हैं, वह अगर उनमें श्रद्धा रखता है तो वे कृपालु महापुरुष उस पर निगरानी रखते हैं कि साधक कहीं भटक न जाय... कैसे भी करके संसार से पार हो जाय ।

एक दिन ऋभु मुनि के मन में हुआ कि 'मेरे शिष्य निदाघ की क्या स्थिति हुई होगी ? चलो, देख आयें ।' परमहंस के वेश में वे निदाघ की कुटिया पर पहुँच गये । निदाघ उन्हें पहचान न पाया लेकिन साधु-संत मानकर उनका सत्कार

किया, उन्हें भोजन कराया। फिर विश्राम के लिए ऋभु मुनि लेटे तो निदाघ पास में बैठकर पंखा झलने लगा। निदाघ ने पूछा : ''महात्माजी ! भोजन तो ठीक था न ? आप तृप्त तो हुए न ? अब आपकी थकान मिट रही है न ?''

ऋभु मुनि समझ गये कि शिष्य ने मुझे पहचाना नहीं है। जो अपने-आपको ही नहीं पहचानता, वह गुरु को कैसे पहचानेगा ? गुरु को पहचानेगा भी तो उनके बाहर के रूप-आकार को। बाहर के रंग-रूप, वेश बदल गये तो पहचान भी बदल जायेगी। जितने अंश में आदमी अपने को जानता है, उतने ही अंश में वह ब्रह्मवेत्ता गुरुओं की महानता का एहसास करता है। सद्गुरु को जान ले, अपने को पहचान ले; अपने को पहचान ले तो सद्गुरु को जान ले।

जिनकी बुद्धि सदा ब्रह्म में रमण करती थी, ऐसे कृपालु भगवान ऋभु ने निदाघ का कल्याण करने के लिए कहा : ''भूख मिटी या नहीं मिटी, यह मुझसे क्यों पूछता है ? मैंने भोजन किया ही नहीं है। भूख मुझे कभी लगती ही नहीं है। भूख और प्यास प्राणों को लगती है लेकिन अज्ञानी समझता है कि 'मुझे भूख-प्यास लगी...' मानो, दो-चार घंटों के लिए भूख-प्यास मिटेगी भी तो फिर लगेगी।

थकान शरीर को लगती है। बहुत-बहुत तो मन उससे तादात्म्य (देहभाव) करेगा तो मन को लगेगी। मुझ चैतन्य को, असंग द्रष्टा को कभी भूख-प्यास, थकान नहीं लगती। तू प्राणों से ही पूछ कि भूख-प्यास मिटी कि नहीं। शरीर से ही पूछ कि थकान मिटी कि नहीं। जिसको कभी भूख-प्यास लगती नहीं, उसको तू पूछता है कि भूख-प्यास मिटी कि नहीं ? जिसको कभी थकान छू तक नहीं सकती, उसको तू पूछता है कि थकान मिटी कि नहीं ?

थकान की नहीं पहुँच है मुझ तक...
भूख-प्यास तो है प्राणों का स्वभाव।
मैं हूँ असंग, निर्लेपी, निर्भाव ॥''

निदाघ ने कहा : ''आप जैसा बोलते हैं, मेरे गुरुदेव भी ऐसा ही बोलते थे। आप जिस प्रकार का ज्ञान दे रहे हैं, ऐसा ही ज्ञान मेरे गुरुदेव देते थे... आप तो मेरे गुरुदेव लगते हैं !''

ऋभु मुनि : ''लगते क्या हैं ? हैं ही, नादान ! मैं ऋभु मुनि ही हूँ। तूने गृहस्थी के जटिल व्यवहार में आत्मविद्या को ही भुला दिया !''

निदाघ ने पैर पकड़ते हुए कहा : ''गुरुदेव ! आप ?''

निदाघ ने गुरुदेव से क्षमा-याचना की। ऋभु मुनि उसे आत्मज्ञान का थोड़ा-सा उपदेश देकर चल दिये। कुछ वर्ष और बीत गये। विचरण करते-करते ऋभु मुनि एक बार फिर वहीं पधारे, अपने शिष्य निदाघ की खबर लेने।

उस वक्त वीरपुरनरेश की सवारी जा रही थी और निदाघ सवारी देखने के लिए खड़ा था। ऋभु मुनि उसके पास जाकर खड़े हो गये। उन्होंने सोचा, 'निदाघ तन्मय हो गया है सवारी देखने में। आँखों को ऐसा भोजन करा रहा है कि शायद उसके मन में आ जाय कि 'मैं राजा बन जाऊँ।' राजेश्वर से भोगेश्वर... पुण्यों के बल से राजा बन जायेगा तो फिर पुण्यनाश हो जायेगा और नरक में जा गिरेगा। एक बार हाथ पकड़ा है तो उसको किनारे लगाना ही है।'

कैसा करुणाभरा हृदय होता है सद्गुरु का ! कहीं साधक फिसल न जाय, भटक न जाय...

ऋभु मुनि ने पूछा : ''यह सब क्या है ?''

निदाघ : ''यह राजा की शोभायात्रा है।''

''इसमें राजा कौन और प्रजा कौन ?''

''जो हाथी पर बैठा है वह राजा है और जो पैदल चल रहे हैं वे प्रजा हैं।''

''हाथी कौन है ?''

''राजा जिस पर बैठा है वह चार पैरवाला पर्वतकाय प्राणी हाथी है । महाराज ! इतना भी नहीं समझते ?''

निदाघ प्रश्न सुनकर चिढ़ने लगा था लेकिन ऋभु मुनि स्वस्थ चित्त से पूछते ही जा रहे थे : ''हाँ... राजा जिस पर बैठा है वह हाथी है और हाथी पर जो बैठा है वह राजा है । अच्छा... तो राजा और हाथी में क्या फर्क है ?''

अब निदाघ को गुस्सा आ गया । छलाँग मारकर वह ऋभु मुनि के कंधों पर चढ़ गया और बोला : ''देखो, मैं तुम पर चढ़ गया हूँ तो मैं राजा हूँ और तुम हाथी हो । यह हाथी और राजा में फर्क है ।''

फिर भी शांतात्मा, क्षमा की मूर्ति ब्रह्मवेत्ता ऋभु मुनि निदाघ से कहने लगे : ''इसमें 'मैं' और 'तुम' किसको बोलते हैं ?''

निदाघ सोच में पड़ गया । प्रश्न अटपटा था । फिर भी बोला : ''जो ऊपर है वह 'मैं' है और जो नीचे है वह 'तुम' है ।''

''किंतु 'मैं' और 'तुम' में क्या फर्क है ? हाथी भी पाँच भूतों का है और राजा भी पाँच भूतों का है । मेरा शरीर भी पाँच भूतों का है और तुम्हारा शरीर भी पाँच भूतों का है । एक ही वृक्ष की दो डालियाँ आपस में टकराती हैं अथवा विपरीत दिशा में जाती हैं पर दोनों में रस एक ही मूल से आता है । इसी प्रकार 'मैं' और 'तुम' एक ही सत्ता से स्फुरित होते हैं तो दोनों में फर्क क्या रहा ?''

निदाघ चौंका : 'अरे ! बात-बात में आत्मज्ञान का ऐसा अमृत परोसनेवाले मेरे गुरुदेव ही हो सकते हैं, दूसरे का यह काम नहीं ! ऐसी बातें तो मेरे गुरुदेव ही कहा करते थे ।'

वह झट्-से नीचे उतरा और गौर से निहारा तो वे ही गुरुदेव ! निदाघ उनके चरणों से लिपट गया : ''गुरुदेव... ! गुरुदेव... ! क्षमा करो । घोर अपराध हो गया । कैसा भी हूँ, आपका बालक हूँ । क्षमा करो प्रभु !''

ऋभु मुनि वही तत्त्वचर्चा आगे बढ़ाते हुए बोले : ''क्षमा माँगनेवाले में और क्षमा देनेवाले में मूल धातु कौन-सी है ?''

''हे भगवन् ! क्षमा माँगनेवाले में और क्षमा देनेवाले में मूल धातु वही आत्मदेव है, जिसमें मुझे जगाने के लिए आप करुणावान तत्पर हुए हैं । हे गुरुदेव ! मैं संसार के मायाजाल में कहीं उलझ न जाऊँ, इसलिए आप मुझे जगाने के लिए कैसे-कैसे रूप धारण करके आते हैं ! हे प्रभु ! आपकी बड़ी कृपा है ।''

''बेटा ! तुझे जो ज्ञान मिला था, उसमें तेरी तत्परता न होने के कारण इतने वर्ष व्यर्थ बीत गये, उसे तू भूल गया । संसार की मोहनिशा में सोता रह गया । संसार के इस मिथ्या दृश्य को सत्य मानता रह गया । जब-जब जिसकी जैसी-जैसी दृष्टि होती है, तब-तब उसे संसार वैसा-वैसा ही भासता है । इस संसार का आधार जो परमात्मा है, उसको जब तक नहीं जाना तब तक ऐसी गलतियाँ होती ही रहेंगी । अतः हे निदाघ ! अब तू जाग । परमात्म-तत्त्व का विचार कर अपने निज आत्मदेव को जान ले, फिर संसार में रहकर भी तू संसार से अलिप्त रह सकेगा ।''

निदाघ ने उनकी बड़ी स्तुति की । ऋभु मुनि की कृपा से निदाघ आत्मनिष्ठ हो गया ।

ऋभु मुनि की इस क्षमाशीलता को सुनकर सनकादि मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने ब्रह्माजी के सामने उनकी महिमा गायी और 'क्षमा' का एक अक्षर 'क्ष' लेकर इनका नाम 'ऋभुक्ष' रख दिया । तब से लोग उन्हें 'ऋभुक्षानंद' के नाम से स्मरण करते हैं ।

कैसा करुणावान हृदय होता है सद्गुरु का !

हे सद्गुरुदेव ! तुम्हारी महिमा है बड़ी निराली ।
किन-किन युक्तियों से करते शिष्यों की उन्नति ॥

सद्गुरुश्री ! आप मेघस्वरूप हैं

संत एकनाथजी 'एकनाथी भागवत' में सद्गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं : ''हे ओंकारस्वरूप श्रीगुरु ! आपको नमस्कार है। आप सत् और चित् के मेघ हो। आप जीवन में आत्मानंद की वर्षा करते हो, जिससे मुमुक्षुरूपी मयूरों को आनंद होता है और वे हर्ष से नाचने, उड़ने लगते हैं। वे सजल मेघों को देखकर 'सोऽहं' अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' का आर्तनाद करने लगते हैं और रोमांचरूपी पंख खोलकर अत्यंत तीव्र गति से सत्त्व का नृत्य करने लगते हैं। आत्मानंद के आवेग में नृत्य करने के कारण उनके सारे शरीर में बड़ी-बड़ी आँखें उभर आती हैं और वे सारे पंख शोभित हो जाते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण उन पंखों को मस्तक पर धारण करते हैं।

मेघों को सामने देखकर आर्त (भक्त, मुमुक्षु) रूपी चातक मुँह खोलते हैं। मुँह में आत्मानंद की एक बूँद पड़ते ही वे सुखी तथा नित्य निर्दोष हो जाते हैं। आर्त की तृष्णा तत्काल दूर होती है। वे आत्मानंद के जल से तृप्त होकर हर्षोल्लास के साथ आत्मसुख का उपभोग करते हैं।

उत्तम और निर्मल भूमि देखकर उचित समय पर वे मेघ वृष्टि करते हैं। उनकी वह सतत और प्रचंड वृष्टि शुरू होने पर जल की अनगिनत लहरें उठने लगती हैं। उस कृपारूपी वर्षा की शुरुआत होते ही शिष्यरूपी नदी में बाढ़ आ जाती है। वह बाढ़ अपने प्रवाह में संकल्प-विकल्परूपी कूड़ा बहा ले जाती है। अनंतर वह निर्मल प्रवाहयुक्त नदी चिदैक्य (चिद्+ऐक्य) सागर में जा मिलती है और उससे समरस होकर आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाती है। फिर वैराग्य से शुद्ध की हुई भूमि अपनी ही आर्द्रता से गीली और मृदु हो जाती है लेकिन उसमें बीज अंकुरित नहीं हुए होते हैं।

ऐसी उस भूमि पर जब जल की निरंतर वर्षा होने लगती है तो वासनारूपी ढेले गलने लगते हैं और सद्भाव की आर्द्रता मिलने से ज्ञान का वाष्प निकलने लगता है। तब वहाँ आत्मबीज बोये बिना ही अपने-आप परिपूर्ण अंकुर निकलकर खेत में फसल तैयार हो जाती है। बालियों में दाने स्वाभाविक रूप से ही स्वस्थ एवं पुष्ट रहते हैं।

परम कृपा के पोषण से पुष्ट होकर समदृष्टि की बालियाँ पकने लगती हैं और परमानंद से सृष्टि भर जाती है। जीव और शिव एकरूप हो जाते हैं। दुःखरूपी अकाल समाप्त होकर सुख के सुकाल का उदय होता है।

कृपाघन सद्गुरु जब कृपा की वर्षा करने लगते हैं तो सत्शिष्यों में हर्ष का कोलाहल शुरू हो जाता है। आत्मज्ञानरूपी मेघ की जब वर्षा होने लगती है तो साथ ही अवताररूपी ओलों की भी वर्षा होती है। वे ओले कार्य के अनुरूप आकार प्राप्त कर अंत में निराकार में विलीन हो जाते हैं।

'गुरु' शब्द का अर्थ है भारी (वजनी) लेकिन वह इतना हलका है कि भवसागर से स्वयं तैरकर शिष्य को भी पार कराता है। उसका आदि, मध्य और अंत वेद भी नहीं जान पाये। वे ही आनंदघन सद्गुरु जनार्दन हैं जिन्होंने मेरा एकाकीपन दूर कर इस एक 'एका' (एकनाथ) को पावन कर दिया और देखो, आत्मज्ञान का बोध कराकर उसी ऐक्य से भक्तिमार्ग पर लगा दिया तथा जो एक है वही अनेक है और जो अनेक है वही एक है यह निश्चय करा दिया।''

('एकनाथी भागवत' से) □

परम उन्नतिकारक श्रीकृष्ण-उद्धव प्रश्नोत्तरी

(पूज्य बापूजी की ज्ञानमयी अमृतवाणी)

(गतांक से आगे)

उद्धवजी ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : ''प्रभु ! दक्षिणा किसको बोलते हैं ?''

श्रीकृष्ण : ''गुरुजनों के उपदेश में जो दक्ष हो जाता है, दृढ़ हो जाता है, अपने मन के नागपाश में जो नहीं आता; गुरु के समक्ष जिसके जाते ही गुरु के मन में हो कि अब इसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश देना चाहिए तो समझ लो उसने दक्षिणा दे दी । उसका व्यवहार, आचरण ऐसा हो कि गुरु को संतोष हो कि धोखा नहीं देगा । यह ब्रह्मविद्या का दुरुपयोग नहीं करेगा, पद का दुरुपयोग नहीं करेगा, पद के अनुरूप विचार करेगा । ऐसी योग्यता से सुसज्ज होना ही दक्षिणा है । देखते ही गुरु का हृदय उछलने लग जाय कि 'ये मेरे साधक हैं, मेरे शिष्य हैं इनको ब्रह्मज्ञान का उपदेश दें । इनको जल्दी भगवद्-अमृत मिले, भगवद्ज्ञान मिले ।' ऐसा आचरण ही दक्षिणा है ।''

''श्रीकृष्ण ! लज्जा किसको बोलते हैं ? लज्जा कब आनी चाहिए ?''

''बुरा कर्म करने में शर्म आये उसको बोलते हैं लज्जा । बुरे काम में, बुरी सोच में, बुरे भोजन में, बुरा मजा लेने में लज्जा आये तो समझ लेना उसकी लज्जा सार्थक हो गयी । ऐसे ही कुछ पहन लिया, घूँघट निकाल दिया तो क्या बड़ी बात हो गयी ! बुरा काम, बुरा बोलना, बुरा सोचना, बुरा खाना, ये जब भी हों तो सावधान होकर दृढ़ संकल्प लें कि 'मैं बुराई की खाई में नहीं गिरूँगा ।' उनसे अच्छाई की तरफ जायें ।''

''प्रभु ! श्रीमान किसको बोलते हैं ?''

''रुपये-पैसे तो यक्षों के पास भी बहुत होते हैं । रावण के पास भी धन बहुत था । श्रीमान वह है जिसके जीवन में किसी चीज की जरूरत नहीं है, भगवत्कथा है और भगवान में ही संतुष्ट है वही उत्तम योगी भी है ।

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

जो यत्न करता है और 'मैं आत्मा हूँ' - ऐसा दृढ़ निश्चय है जिसका, वह संतुष्ट रहेगा । अंतरात्मा में तृप्त, संतुष्ट व्यक्ति ही वास्तव में श्रीमान है, धनवान है ।''

उद्धवजी : ''दरिद्र कौन है ?''

भगवान : ''जिसको संतोष नहीं है । 'गहने चाहिए, कपड़े चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए... मेरा चला न जाय' - ऐसा जो सोचता है वह कंगाल है ।''

''प्रभु ! सुख क्या है ?''

''उद्धव ! सामान्य आदमी समझता है कि मकान हो, दुकान हो, चीज-वस्तुएँ हों, विषय-भोग हों, सब कहने में चलें तो यह सुख है । नहीं, यह सुख नहीं है । सुख-सुविधाएँ प्राप्त हों, चाहे सब चली जायें फिर भी चित्त ज्यों-का-त्यों समता में रहे वह वास्तविक सुख है । सुखद अवस्था आये, चाहे चली जाय फिर भी अंतःकरण में हलचल न हो, अपना स्वरूप ज्यों-का-त्यों है ऐसा ज्ञान बना रहे वह वास्तविक सुख है, वास्तविक ज्ञान है, वास्तविक रस है, वास्तविक भगवत्प्राप्ति है ।

सचमुच में सुख क्या है कि सुखद, अनुकूल वस्तु मिले तो भी उसकी आसक्ति-वासना न हो, प्रतिकूल परिस्थिति आये तब भी दुःख न हो वह समता ही वास्तव में सुख है ।'' बहुत ऊँची बात कह दी भगवान ने ! (क्रमशः) ❐

सद्गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकटाने का पर्व : गुरुपूर्णिमा

(पूज्य बापूजी की ज्ञानमयी अमृतवाणी)

किसी चक्र के केन्द्र में जाना हो तो व्यास का सहारा लेना पड़ता है। यह जीव अनादिकाल से माया के चक्र में घटीयंत्र (अरहट) की नाईं घूमता आया है। संसार के पहिये की जो कील है वहाँ नहीं पहुँचा तो उसका घूमना चालू ही रहता है और वहाँ पहुँचना है तो 'व्यास' का सहारा लेना होगा। जैसे प्रधानमंत्री के पद पर कोई बैठता है तो वह प्रधानमंत्री है, ऐसे ही संसार के चक्र से पार करनेवाले जो गुरु हैं वे 'व्यास' हैं। वेदव्यासजी के प्रसाद को जो ठीक ढंग से वितरण करते हैं, उन्हें भी हम 'व्यास' कहते हैं।

आषाढ़ी पूर्णिमा को 'व्यासपूर्णिमा' कहा जाता है। वेदव्यासजी ने जीवों के उद्धार हेतु, छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी उत्थान कैसे हो, महान-से-महान विद्वान को भी लाभ कैसे हो - इसके लिए वेद का विस्तार किया। इस व्यासपूर्णिमा को 'गुरुपूर्णिमा' भी कहा जाता है। 'गु' माने अंधकार, 'रु' माने प्रकाश। अविद्या, अंधकार में जन्मों से भटकता हुआ, माताओं के गर्भों में यात्रा करता हुआ यह जीव आत्मप्रकाश की तरफ चले इसलिए इसको ऊपर उठाने के लिए गुरुओं की जरूरत पड़ती है। अंधकार हटाकर प्रकाश की ज्योति जगमगानेवाले जो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आत्मारामी महापुरुष अपने-आपमें तृप्त हुए हैं, समाज व्यासपूर्णिमा के दिन ऐसे महापुरुषों की पूजा, आदर-सत्कार करता है। उनके गुण अपने में लाने का संकल्प करता है।

बिखरी चेतना, बिखरी वृत्तियों को सुव्यवस्थित करके कथा-वार्ताओं द्वारा जो सुव्यवस्था करें उनको 'व्यास' कहते हैं। व्यासपीठ पर विराजनेवाले को आज भी भगवान व्यास की पदवी प्रदान करते हैं। हे मेरे तारणहार गुरुदेव ! आप मेरे व्यास हो। जिनमें जिज्ञासुओं को तत्त्वज्ञान का उपदेश देने का सामर्थ्य है वे मेरे गुरु हैं। हे सच्चिदानंदस्वरूप का दान देनेवाले दाता ! आप व्यास भी हैं और मेरे गुरु भी हैं।

त्रिगुणमयी माया में रमते जीव को गुणातीत करनेवाले हे मेरे गुरुदेव ! आप ही मेरे व्यास, मेरे गुरु और मेरे सद्गुरु हैं। आपको हजार-हजार प्रणाम हों ! धन्य हैं भगवान वेदव्यासजी, जिन्होंने जिज्ञासुओं के लिए वेद के विभाग करके कर्म, उपासना और ज्ञान के साधकों का मार्गदर्शन किया। उन व्यास के सम्मान में मनायी जाती है व्यासपूर्णिमा। ऐसी व्यासपूर्णिमा को भी प्रणाम हो जो साधकों को प्रेरणा और पुष्टि देती है।

गुरु माने भारी, बड़ा, ऊँचा। गुरु शिखर ! तिनका थोड़े-से हवा के झोंके से हिलता है, पत्ते भी हिलते हैं लेकिन पहाड़ नहीं डिगता। वैसे ही संसार की तू-तू, मैं-मैं, निंदा-स्तुति, सुख-दुःख, कूड़-कपट, छैल-छबीली अफवाहों में जिनका मन नहीं डिगता, ऐसे सद्गुरुओं का सान्निध्य देनेवाली है गुरुपूर्णिमा। ऐसे सद्गुरु का हम कैसा पूजन करें ? समझ में नहीं आता फिर भी पूजन किये बिना रहा नहीं जाता।

कैसे करें मानस-पूजन ?

गुरुपूनम की सुबह उठें। नहा-धोकर थोड़ा-बहुत धूप, प्राणायाम आदि करके श्रीगुरुगीता का पाठ कर लें। फिर इस प्रकार मानसिक पूजन करें :

'मेरे गुरुदेव ! मन-ही-मन, मानसिक रूप

से मैं आपको सप्ततीर्थों के जल से स्नान करा रहा हूँ। मेरे नाथ ! स्वच्छ वस्त्रों से आपका चिन्मय वपु (चिन्मय शरीर) पोंछ रहा हूँ । शुद्ध वस्त्र पहनाकर मैं आपको मन से ही तिलक करता हूँ, स्वीकार कीजिये । मोगरा और गुलाब के पुष्पों की दो मालाएँ आपके वक्षस्थल में सुशोभित करता हूँ। आपने तो हृदयकमल विकसित करके उसकी सुवास हमारे हृदय तक पहुँचायी है लेकिन हम यह पुष्पों की सुवास आपके पावन तन तक पहुँचाते हैं, वह भी मन से, इसे स्वीकार कीजिये । साष्टांग दंडवत् प्रणाम करके हमारा अहं आपके श्रीचरणों में धरते हैं ।

हे मेरे गुरुदेव ! आज से मेरी देह, मेरा मन, मेरा जीवन मैं आपके दैवी कार्य के निमित्त पूरा नहीं तो हररोज २ घंटा, ५ घंटा अर्पण करता हूँ, आप स्वीकार करना । भक्ति, निष्ठा और अपनी अनुभूति का दान देनेवाले देव ! बिना माँगे कोहिनूर का भी कोहिनूर आत्मप्रकाश देनेवाले हे मेरे परम हितैषी ! आपकी जय-जयकार हो ।'

इस प्रकार पूजन तब तक बार-बार करते रहें जब तक आपका पूजन गुरु तक, परमात्मा तक नहीं पहुँचे । और पूजन पहुँचने का एहसास होगा, अष्टसात्त्विक भावों (स्तम्भ[१], स्वेद[२], रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य[३], अश्रु, प्रलय[४]) में से कोई-न-कोई भाव भगवत्कृपा, गुरुकृपा से आपके हृदय में प्रकट होगा । इस प्रकार गुरुपूर्णिमा का फायदा लेने की मैं आपको सलाह देता हूँ। इसका आपको विशेष लाभ होगा, अनंत गुना लाभ होगा ।

गुरुकृपा तो सबको चाहिए

बुद्धिमान मनुष्य कंगाल होना पसंद करता है, निगुरा होना नहीं । वह निर्धन होना पसंद करता है, आत्मधन का त्याग नहीं । वह निःसहाय होना पसंद करता है, गुरु की सहायता का त्याग कभी नहीं । और जिसको गुरु की सहायता मिलती है वह निःसहाय कैसे रह सकता है ! जिसके पास आत्मधन है उसको बाहर के धन की परवाह कैसी !

इन्द्र से जब उनके गुरु रूठे तभी इन्द्र निःसहाय हुए थे । जब गुरुकृपा मिली तो इन्द्र फिर सफल हुए । देवताओं को और उनके राजा को भी गुरुकृपा चाहिए । दैत्यों और दैत्यों के राजा को भी गुरुकृपा चाहिए । बुद्धिमान शिवाजी जैसों को भी गुरुकृपा चाहिए और विवेकानंद को भी गुरुकृपा चाहिए ।

भगवान कृष्ण अपने गुरु का आदर करते, उन्हें रथ में बिठाते और घोड़े खोलकर स्वयं रथ खींचते । श्रद्धाहीन निगुरे लोग क्या जानें गुरुभक्ति की महिमा, ईश्वरभक्ति की महिमा ! पाश्चात्य भोगविलास से जिनकी मति भोग के रंग से रँग गयी है, उनको क्या पता कि विवेकानंद को रामकृष्ण की करुणा-कृपा से क्या मिला था ! वे क्या जानें रैदास की कृपा से मीरा को क्या मिला था ! वे क्या जानें समर्थ की निगाहों से शिवाजी को क्या मिला था ! वे क्या जानें लीलाशाहजी बापू की कृपा से आशाराम को क्या मिला था ! वे बेचारे क्या जानें ? दोषदर्शन करके अपने अंतःकरण की मलिनता फैलानेवाले क्या जानें महापुरुषों की कृपा-प्रसादी ! नास्तिकता और अहं से भरा दिल क्या जाने सात्त्विकता और भगवत्प्रीति की सुगंध की महिमा ! कबीरजी ने ऐसे लोगों को सुधारने का यत्न किया :

सुन लो चतुर सुजान निगुरे नहीं रहना...
निगुरे का नहीं कहीं ठिकाना चौरासी में आना जाना ।
पड़े नरक की खान निगुरे नहीं रहना...
निगुरा होता हिय का अंधा खूब करे संसार का धंधा ।
क्यों करता अभिमान निगुरे नहीं रहना...
सुन लो...

और वे लोग संतों की निंदा करके पाठक संख्या या टी.आर.पी. बढ़ाना चाहते हैं, अपनी रोटी

१. खम्भे जैसा खड़ा रहना २. पसीना छूटना ३. वर्ण बदलना ४. तल्लीन होना

सेंकना चाहते हैं। प्रचार के साधनों की टी.आर.पी. बढ़ाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। ऐसे उल्लुओं को कबीरजी ने खुल्ला किया है :

कबिरा निंदक ना मिलो, पापी मिलो हजार।
एक निंदक के माथे पर, लाख पापिन को भार॥

संत तुलसीदासजी ने भी ऐसे कुप्रचारकों से बचने हेतु समाज को सावधान किया :

हरि हर निंदा सुनइ जो काना।
होइ पाप गोघात समाना॥
हर गुर निंदक दादुर होई।
जन्म सहस्र पाव तन सोई॥

'गुरुग्रंथ साहिब' में आया :

संत का निंदकु महा हतिआरा।
संत का निंदकु परमेसुरि मारा॥
संत के दोखी की पुजै न आसा।
संत का दोखी उठि चलै निरासा॥

अगर सद्गुरु मिल जायें तो इस मैला बनानेवाले, वमन, विष्ठा, थूक और मूत्र बनानेवाले शरीररूपी कारखाने में से परब्रह्म परमात्मा प्रकट कर सकती है सद्गुरु की कृपा ! निंदक अभागे क्या जानें ? उन्हें तो निकोटिन जहरवाली सिगरेट अच्छी लगती है, उनको तो अनेक रोग देनेवाली चाय और कॉफी अच्छी लगती है। उन्हें तो जिसमें अल्कोहल का जहर भरा है वह शराब अच्छी लगती है अथवा तो अहंकार बढ़ानेवाला जहर भरा है ऐसी खुशामद अच्छी लगती है लेकिन **सद्गुरु के सत्शिष्य को तो सद्गुरु के दीदार अच्छे लगते हैं, सद्गुरु का सत्संग अच्छा लगता है, सद्गुरु का अनुभव अच्छा लगता है।**

तू पचीस वर्ष नंगे पैर यात्रा कर ले, पचासों वर्ष तीर्थाटन कर ले, बारह साल शीर्षासन लगाकर उलटा लटक जा पर जब तक तू ज्ञानदाता सद्गुरु की कृपा में, सद्गुरु के चरणों में अपने-आपको नहीं सौंपेगा, तब तक अहंकार और अज्ञान नहीं जायेगा।

रहूगण राजा कहते हैं : ''भगवन् ! आपने जगत का उद्धार करने के लिए ही यह श्रीविग्रह धारण किया है। मेरे सद्गुरु ! आपके चरणों में मेरा बार-बार प्रणाम है।'' धन्य है रहूगण की मति ! नंगे पैर, खुले सिर आवारा स्थिति में घूमनेवाले जड़भरत को वह पूरा पहचान गया।

सत्शिष्य सद्गुरु के पास आयेगा, पायेगा, मिटेगा, सद्गुरुमय होगा और सैलानी आयेगा तो देखकर, जाँच-पड़ताल (ऑडिट) करके चला जायेगा। विद्यार्थी दिमाग का आयेगा तो सद्गुरु की बातों को एकत्र करेगा, सूचनाएँ एकत्र करके ले जायेगा, अन्य जगह उन सूचनाओं का उपयोग करके अपने को ज्ञानी सिद्ध करने के भ्रम में जियेगा। सत्शिष्य ज्ञानी सिद्ध होने के लिए नहीं, ज्ञानमय होने के लिए सद्गुरु के पास आता है, रहता है और अपने पाप, ताप, अहं को मिटाकर आत्ममय हो जाता है।

पाश्चात्य देशों में देखा गया है कि समाज में जो व्यक्ति प्रसिद्ध हो गया है, जिसके द्वारा बहुजनहिताय की प्रवृत्ति हुई है उसके नाम का स्मारक (मेमोरियल) बनाते हैं, मूर्ति (स्टैच्यू) बनाते हैं, कॉलेज का खंड बनाते हैं लेकिन भारतीय ऋषियों ने काल की गति को जाना कि खंड भी देखते-देखते जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, मेमोरियल भी भद्दा हो जाता है। जो श्रेष्ठ हैं, समाज के लिए आदरणीय हैं उन महापुरुषों की स्मृति होनी ही चाहिए ताकि समाज उनको देखकर ऊपर उठे। उन आदरणीय पुरुषों को किसी कमरे की दीवार के पत्थर में न छपवाकर साधकों के दिल में छापने की जो प्रक्रिया है वह व्यासपूर्णिमा से शुरू हुई।

साधकों के दिल में उन महापुरुषों की गरिमा और महत्त्व को जानने की प्रक्रिया का संस्कार डालने की ऋषियों ने जो आकांक्षा की, उस दिव्य इच्छा के पीछे महापुरुषों के हृदय में केवल करुणा ही थी। ❑

ऐसी निष्ठा कि मंत्र हुआ साकार

सन् १५०९ में विजयनगर राज्य के बाड़ ग्राम (वर्तमान में कर्नाटक के हवेरी जिले का एक गाँव) में जागीरदार वीरप्पा व उनकी पत्नी बच्चम्मा के यहाँ एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया कनक। इनकी जाति कुरुब (भेड़-बकरी चरानेवाले) थी। बचपन में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। बड़े होने पर पिता की जागीरदारी इन्होंने सँभाल ली। एक बार भूमि-शोधन करते समय कनक को भूमिगत अपार धनराशि मिली। उसके बाद इनका नाम पड़ा 'कनकनायक'। इन्होंने उस धन से कागीनेले गाँव में भगवान केशव का भव्य देवालय बनवाया।

एक रात स्वप्न में कनकनायक को भगवान ने कहा : ''कनका ! तू मेरी शरण आ जा !''

स्वप्न में ही वे बोले : ''शरण ? भीख माँगकर जीने के लिए मैं क्यों दास बनूँ ? मैं तो राजा बनना चाहता हूँ।''

कुछ समय बाद उनकी पत्नी और माँ की मृत्यु हो गयी। एक दिन पुनः भगवान स्वप्न में आकर बोले : ''कनका ! मेरी बात भूल गया ?''

''जागीरदारी छोड़कर भिक्षा माँगकर क्यों खाऊँ ?''

''जागीरदारी गयी तो ?''

''बकरी चराऊँगा।''

''बकरी चराने को तैयार है, मेरा बनने को नहीं ?''

''अंऽऽऽ...'' कनक की नींद टूट गयी। सोचा, 'यह क्या मुसीबत है ! भगवान क्यों मेरे पीछे पड़े हैं ! पिता मर गये, पत्नी मर गयी, माँ मर गयी, अब हरि का दास बनकर भीख माँगना बाकी रहा क्या !'

कुछ समय बाद उस क्षेत्र में घमासान युद्ध हुआ। उसमें कनक का पूरा शरीर बाणों से छलनी हो गया। ऐसी विषम परिस्थिति में उन्हें अब एक ही सहारा जान पड़ा। वे 'केशव... केशव...' पुकारते हुए बेहोश हो गये। शत्रु उन्हें मरा हुआ समझ छोड़ के चले गये।

भगवान मनुष्यरूप में आये और कनक को जगाया। कनक ने पूछा : ''आप कौन हैं ?''

भगवान बोले : ''क्या कनका ! इतनी जल्दी मुझे भूल गया ? इस तरह युद्ध करके लाशों के बीच गिरने में सुख है या मेरा बनने में सुख है, बताओ ?''

''अभी मेरे पूरे शरीर में बहुत दर्द हो रहा है, ठीक होने पर आपको बता दूँगा।''

''मैं अभी ठीक कर देता हूँ।''

भगवान का स्पर्श होते ही कनक का सारा दर्द दूर होकर शरीर पुलकित हो गया। वे बोले : ''प्रभु ! आप इतनी परीक्षा क्यों ले रहे हैं ? मैं आपका बना तो जैसा बोलूँगा वैसा आप करोगे ?''

''हाँ करूँगा।''

''तो ठीक है, मैं जब भी स्मरण करूँ आप दर्शन देना और अभी अपना असली रूप दिखाइये।''

भगवान ने अपने मनोहर चतुर्भुज रूप का दर्शन कराया, जिसे देखकर कनक की भाव-समाधि लग गयी और वे वहीं मौन, शांत अवस्था में बैठे रहे। अब तन तो वही था किंतु मन परिवर्तित हो गया, जीवन ने करवट ली। कनक नामक शरीर में स्थित वैराग्यरूपी असली कनक अपनी पूर्ण कांति के साथ देदीप्यमान हो रहा था। जब उन्होंने होश सँभाला तो घर आये और अपना सारा कामकाज दूसरों को सौंप दिया। 'केशव... केशव...' की पुकार गाँव की गलियों में गूँज उठी और थोड़े ही समय में लोगों ने देखा कि भगवान

केशव के मंदिर में कनक अपने आँसुओं से प्रभु का चरणाभिषेक कर रहे हैं।

कनक के कल्याण का जिम्मा अब उनके प्रभु ने उठा लिया था। जब भगवान अपने भक्त का परम कल्याण करना चाहते हैं तो सद्गुरुरूप में उसके जीवन में प्रवेश करते हैं, साथ ही भक्त को अपना पता भी बता देते हैं।

मध्यरात्रि हुई। कनक ने स्वप्न देखा। भगवान स्नेहभरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कह रहे थे : ''कनका ! तू मुझे हमेशा अपने पास देखना चाहता है न ! तो मैं तुम्हारे जीवन में ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के रूप में प्रवेश करूँगा। अब तू देर न कर, श्री व्यासरायजी से दीक्षा ले ले। जब गुरु-उपदेश से तू मुझे तत्त्वरूप से जान लेगा तो मैं तुझसे बिछुड़ ही नहीं सकता। फिर तू मेरा अत्यंत प्यारा हो जायेगा।''

कनक गुरु व्यासरायजी को ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। उस समय व्यासरायजी मदनपल्ली प्रांत (आंध्र प्रदेश) में एक बड़ा तालाब बनवा रहे थे। तालाब के सामने स्थित बड़े पत्थरों को कैसे हटायें, ऐसा सोच रहे थे कि इतने में कनक वहाँ पहुँच गये और उन्हें प्रणाम किया।

व्यासरायजी ने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

''जी कनक, बकरी चरानेवाला।''

''क्यों आये हो ?''

''गुरुदेव ! आपसे मंत्र-उपदेश लेने आया हूँ।''

''बकरी चरानेवाले को क्या मंत्र देना ? 'भैंसा' मंत्र !''

मरुभूमि में प्यास के मारे भटकते पथिक को जल का स्रोत मिल गया। सूखते तालाब में छटपटाती मछली को महासागर मिल गया। कनक का मन-मयूर झूम उठा : 'मिल गया गुरुमंत्र !' उन्होंने बड़े प्रेमभाव से गुरुजी को प्रणाम किया और आज्ञा लेकर निर्जन स्थान में एक पेड़ के नीचे बैठ के 'भैंसा-भैंसा' जपने लगे। उनकी गुरुनिष्ठा और निर्दोष, सात्त्विक श्रद्धा से भगवान यमराज का वाहन भैंसा सामने प्रकट होकर गम्भीर आवाज में बोला : ''क्या चाहिए ?''

कनक ने उसे ले जाकर व्यासरायजी के सामने खड़ा कर दिया। निवेदन किया : ''गुरुदेव ! आपका मंत्र प्रकट रूप धारण कर चुका है। इसका क्या करूँ ?''

व्यासरायजी : ''साधो ! साधो !! निष्ठा इसीका नाम है। तुममें शिष्य बनने के लक्षण हैं। अब इस विशालकाय भैंसे से तालाब के सामने जो बड़े-बड़े पत्थर हैं, उनको हटवा दो !''

कनक ने गुरुआज्ञा शिरोधार्य कर उस भैंसे से कार्य पूर्ण कराया। कनक की निष्ठा देखकर व्यासरायजी का हृदय छलक उठा और उन्हें विधिवत् मंत्रदीक्षा दे के अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। उस दिन से कनक का नाम पड़ा कनकदास। कनकदासजी कर्नाटक के सुविख्यात संतों में से एक हैं। इनके कीर्तन कर्नाटक में अत्यंत लोकप्रिय हैं। ये कीर्तन हरिभक्ति से ओतप्रोत होने के साथ ही इनमें आध्यात्मिक गहराई भी झलकती है। आप लिखते हैं :

साधु संग कोट्टु, निन्न पादभजनेयित्तु।
एन्न भेदमाडि नोडदिरु, अधोक्षज ॥

'हे अधोक्षज (विष्णुजी) ! साधु का संग और अपने चरणों का स्मरण देना। आप मुझे भेदबुद्धि से मत देखना (मुझे नजरअंदाज न करना)।'

ज्ञान भक्ति कोट्टु, निन्न ध्यानदल्लि इट्टु।
सदा हीन बुद्धी बिडिसु मुन्न, जनार्दन ॥

'हे जनार्दन ! मुझे ज्ञान, भक्ति दीजिये। मुझे आपके ध्यान में तल्लीन रखिये। हमेशा के लिए मेरी हीनबुद्धि दूर कीजिये।'

पुट्टिसलु बेड मुन्दे, पुट्टिसिदके पालिसिन्नु।
इष्टु मात्र बेडिकोम्बे, श्री कृष्णने ॥

'हे श्रीकृष्ण ! अब आगे जन्म नहीं देना। मुझे पैदा किया है तो मेरा पालन कीजिये, केवल इतनी ही प्रार्थना करता हूँ।' □

मृत्युपीड़ाएँ मंत्रदीक्षित को नहीं सतातीं

(पूज्य बापूजी की पावन अमृतवाणी)

भगवान के नाम का आश्रय और भगवान के प्यारे संतों का सत्संग जिनके जीवन में है, वे लोग जितना फायदे में हैं उतना मनमुख लोग नहीं हैं।

रानी एलिजाबेथ टेबल पर भोजन कर रही थी, एकाएक दौरा पड़ा। डॉक्टरों ने कहा : ''पाँच मिनट से ज्यादा नहीं जी सकोगी।''

उसने कहा : ''मेरा राज्यवैभव सब कुछ ले लो पर मुझे एक घंटा जिंदा रखो, जिससे मैं कुछ कर सकूँ।''

मृत्युवेला आने पर कुछ कर सकें, ऐसा जीवित रखने का डॉक्टरों के वश का ही नहीं है। वह मर गयी बेचारी।

अमेरिका का एक बड़ा धनाढ्य व्यक्ति एंड्र्यू कार्नेगी डींग हाँकता था कि 'मौत आयेगी तो मैं उसको बोलूँगा अभी बाहर खड़ी रह ! मैं इतना काम निपटाकर फिर आऊँगा।' लेकिन उस डींग हाँकनेवाले की मुसाफिरी करते-करते कार में ही मौत हो गयी। कार में से उसकी लाश निकालनी पड़ी।

सामान्य आदमी मरते हैं तो चार तकलीफें उनके सिर पर होती हैं। मरते समय कोई-न-कोई पीड़ा होती है। **एक तो शरीर की पीड़ा सताती है।** पीड़ा-पीड़ा में प्राण निकल जाते हैं। चाहे हृदयाघात (हार्टअटैक) की पीड़ा हो, चाहे बुढ़ापे की हो, चाहे कोई और पीड़ा हो। गुरु साधक को युक्ति सिखाते हैं कि शारीरिक पीड़ा होती है तो शरीर को होती है, तुम्हारे में नहीं घुसनी चाहिए। सद्गुरु ज्ञान देते हैं कि शरीर की बीमारी तुम्हारी बीमारी नहीं, मन का दुःख तुम्हारा दुःख नहीं है। गुरुजी दिव्य ज्ञान पहले से ही देते रहते हैं। तो मरते समय अपने में पीड़ा का आरोप न करनेवाले साधक बहुत उन्नत पद को पाते हैं लेकिन मरते समय शरीर की पीड़ा को अपने में जो मानते हैं वे पीड़ित होकर मरते हैं।

जो कोई पीड़ित होकर मरता है या प्रेत होता है तो उसको मरते समय की पीड़ा सताती रहती है। प्रेत जिस शरीर में जाते हैं वहाँ ऐसे ही काँपते रहते हैं जैसे मरते समय शरीर छोड़कर आये थे। **अंते मतिः सा गतिः।** तो मरते समय अंत मति सुहानी हो, इसका ध्यान रखते हैं संत-महापुरुष। गुरु चाहते हैं कि मरते समय की पीड़ा मेरे शिष्यों को न सताये।

दूसरा, किसीसे आपने बदसलूकी की है, किसीके साथ अत्याचार किया है तो मरते समय अंतरात्मा लानतें देता है। किसीको दुःख दिया है तो मरते समय वह कर्म भी पीड़ा देगा, अतः उससे माफी माँग लो। औरंगजेब को मरते समय बहुत पीड़ा हुई क्योंकि उसने सरमद फकीर की और अपने भाई दारा शिकोह की हत्या करवायी थी। इस प्रकार के जो बड़े पाप होते हैं वे मरते समय अंतरात्मा को खूब तपाते हैं व पीड़ा देते हैं।

तीसरा, जीवन भर जिनके साथ हमारा मोह रहा, ममत्व रहा, आसक्ति रही उनके वियोग का कष्ट होता है कि वे हमसे छूट रहे हैं। जहाँ आपका मन अटका है, रुपया-पैसा, शादी-ब्याह, एफ.डी. (आवधिक जमा) आदि की याद आयेगी। इस देश का नाम अजनाभ खंड था। राजा भरत ने इस देश की सुंदर व्यवस्था की थी तो भरत के नाम से इसका नाम पड़ गया

'भारत'। भरत ने मरते समय हिरण का चिंतन किया तो मरने के बाद हिरण बना।

चौथी बात होती है कि मरकर कहाँ जाऊँगा ? ये चार मुसीबतें सबके सिर पर होती हैं लेकिन साधकों के ऊपर नहीं होतीं क्योंकि उनके पास गुरु का दिया आत्मज्ञान, परमात्म-ध्यान और मंत्र है। मंत्रदीक्षा लेनेवाले का आत्मबल, बुद्धिबल, मनोबल बढ़ जाता है। गुरुमंत्र के कितने-कितने फायदे हैं उनकी गिनती हम-आप नहीं कर सकते हैं। भगवान शिवजी कहते हैं :

गुरुमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्ध्यन्ति नान्यथा।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्ति गुरुपुत्रके ॥

गुरुमंत्र जिसके मुख में है उसको आध्यात्मिक, आधिदैविक सब फायदे होते हैं। जिसके जीवन में गुरुमंत्र नहीं वह बालिश है, मूर्ख है। शास्त्रों में निगुरे आदमी की ऐसी दुर्दशा मानी गयी है :

सुन लो चतुर सुजान निगुरे नहीं रहना...
निगुरे का नहीं कहीं ठिकाना,
चौरासी में आना जाना।
पड़े नरक की खान निगुरे नहीं रहना...
गुरु बिन माला क्या सटकावे,
मनवा चहुँ दिश फिरता जावे।
यम का बने मेहमान निगुरे नहीं रहना...
हीरा जैसी सुंदर काया,
हरि भजन बिन जनम गँवाया।
कैसे हो कल्याण निगुरे नहीं रहना...
निगुरा होता हिय का अंधा,
खूब करे संसार का धंधा।
क्यों करता अभिमान निगुरे नहीं रहना...
सुन लो चतुर सुजान निगुरे नहीं रहना।

सही दिशा के लिए दीक्षा आवश्यक

भगवान शिवजी पार्वती को वामदेव गुरु से दीक्षा दिलाते हैं। शिवजी की बुद्धि की बराबरी कौन कर सका है ? शिवजी की अक्ल से कोई अपनी अक्ल मिला नहीं सकता। इतने महान हैं फिर भी शिवजी ने पार्वती को वामदेव गुरु से दीक्षा दिलायी। कलकत्ते की काली माता प्रकट होकर गदाधर पुजारी से बोलती हैं कि ''तोतापुरी गुरु से दीक्षा ले लो।''

बोले : ''मैया ! तुम प्रकट हो जाती हो तो फिर मुझे दीक्षा लेने की क्या जरूरत ?''

बोली : ''मैं मानसिक भावना से प्रकट होती हूँ। तेरे को मंदिर में दर्शन होते हैं, अर्जुन को तो श्रीकृष्ण के सतत दर्शन होते थे फिर भी अर्जुन को गुरु की जरूरत पड़ी।''

गदाधर पुजारी ने तोतापुरी गुरु से दीक्षा ली। तो जो कृष्ण का आत्मा है, राम का आत्मा है, वही मेरा आत्मा है, ऐसा साक्षात्कार हुआ तब उनका नाम पड़ा रामकृष्ण परमहंस। अगर गदाधर में से रामकृष्ण बने, नरेन्द्र में से विवेकानंद बने, आसुमल में से आशाराम बने तो यह गुरुकृपा है।

नामदेव महाराज के सामने विट्ठल भगवान प्रकट हो जाते थे। उन्होंने कहा : ''जाओ, विसोबा खेचर से दीक्षा लो।''

बोले : ''अब तुम्हारे दर्शन होते हैं फिर भी...''

''अरे, हम भी आते हैं तो गुरु की शरण में जाते हैं। सांदीपनि गुरु की शरण में गये थे कृष्ण रूप में और वसिष्ठ मुनि के चरणों में गये थे भगवान राम के रूप में। तू इनसे भी बड़ा है क्या ?''

दीक्षा राग-द्वेष मिटाकर जीव-ब्रह्म की एकता करा देती है। अगर गदाधर पुजारी को काली माता प्रकट होकर आदेश नहीं देतीं और दीक्षा नहीं लेते तो गदाधर पुजारी ही रह जाते, रामकृष्ण परमहंस नहीं बन पाते। नामदेव को अगर विट्ठल भगवान प्रकट होकर गुरुदीक्षा लेने की आज्ञा नहीं देते तो नामदेव भावुक भगत रह जाते। इसलिए जीवन को सही दिशा देने के लिए आत्मज्ञान की दीक्षा बहुत आवश्यक है। ❐
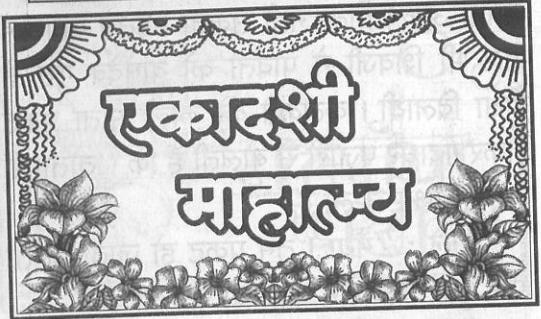
महाकल्याणकारी व्रत

(योगिनी एकादशी : १५ जून)

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : ''वासुदेव ! आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कृपया उसका वर्णन कीजिये ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़ (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार ज्येष्ठ) मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम 'योगिनी' है । यह बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली है । संसारसागर में डूबे हुए प्राणियों के लिए यह सनातन नौका के समान है । तीनों लोकों में यह सारभूत व्रत है ।

अलकापुरी के राजाधिराज कुबेर सदा भगवान शिव की भक्ति में तत्पर रहते हैं । उनका हेममाली नामक एक यक्ष सेवक था, जो पूजा के लिए फूल लाया करता था । हेममाली की पत्नी का नाम विशालाक्षी था । वह यक्ष कामपाश में आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नी में आसक्त रहता था । एक दिन हेममाली मानसरोवर से फूल लाकर अपने घर में ही ठहर गया और पत्नी के प्रेमपाश में खोया रह गया, अतः कुबेर के भवन में न जा सका । इधर कुबेर मंदिर में बैठकर शिवजी का पूजन कर रहे थे । उन्होंने दोपहर तक फूल आने की प्रतीक्षा की । जब पूजा का समय व्यतीत हो गया तो यक्षराज ने कुपित होकर सेवकों से पूछा : ''यक्षो ! दुरात्मा हेममाली क्यों नहीं आ रहा है ?''

यक्षों ने कहा : ''राजन् ! वह तो पत्नी की कामना में आसक्त हो घर में ही रमण कर रहा है ।''

यह सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये और तुरंत ही हेममाली को बुलवाया । देर हुई जानकर हेममाली के नेत्र भय से व्याकुल हो रहे थे । वह आकर कुबेर के सामने खड़ा हो गया । उसे देखकर कुबेर बोले : ''ओ पापी ! अरे दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवान की अवहेलना की है, अतः कोढ़ से युक्त और अपनी उस प्रियतमा से वियुक्त हो इस स्थान से भ्रष्ट होकर अन्यत्र चला जा ।''

कुबेर के ऐसा कहने पर वह उस स्थान से नीचे गिर गया । कोढ़ से सारा शरीर पीड़ित था परंतु शिव-पूजा के प्रभाव से उसकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं हुई । तदनंतर वह पर्वतों में श्रेष्ठ मेरुगिरि के शिखर पर गया । वहाँ उसे मुनिवर मार्कण्डेयजी के दर्शन हुए । पापकर्मा यक्ष ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया । मार्कण्डेयजी ने उसे भय से काँपते देख पूछा : ''तुझे कोढ़ के रोग ने कैसे दबा लिया ?''

यक्ष ने सम्पूर्ण वृत्तांत यथावत् बताकर प्रार्थना की : ''मुनिश्रेष्ठ ! संतों का चित्त स्वभावतः परोपकार में लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधी को कर्तव्य का उपदेश दीजिये ।''

मार्कण्डेयजी ने कहा : ''तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, इसलिए मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रत का उपदेश देता हूँ । तुम आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की 'योगिनी एकादशी' का व्रत करो । इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायेगा ।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''राजन् ! मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने योगिनी एकादशी का व्रत किया, जिससे उसका कोढ़ दूर हो गया । इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान करने पर वह पूर्ण सुखी हो गया ।

नृपश्रेष्ठ ! यह योगिनी का व्रत ऐसा पुण्यदायी है कि ८८ हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने से जो फल मिलता है, वही फल योगिनी एकादशी का व्रत करनेवाले मनुष्य को मिलता है । योगिनी महान पापों को शांत करनेवाली और महान पुण्यफल

देनेवाली है । इस माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ।''

भोग-मोक्ष प्रदायक व्रत

(देवशयनी एकादशी : ३० जून)

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : ''भगवन् ! आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि बतलाने की कृपा करें ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम शयनी (देवशयनी) है । मैं उसका वर्णन करता हूँ । वह महान पुण्यमयी, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापों को हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है । इस दिन जिन्होंने कमल पुष्प से कमललोचन भगवान विष्णु का पूजन तथा एकादशी का उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओं का पूजन कर लिया ।

हरिशयनी एकादशी के दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलि के यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर तब तक शयन करता है, जब तक आगामी कार्तिक की एकादशी नहीं आ जाती । अतः आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी तक मनुष्य को भलीभाँति धर्म का आचरण करना चाहिए । जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है । इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशी का व्रत करना चाहिए । एकादशी की रात में जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णु की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए । ऐसा करनेवाले पुरुष के पुण्यों की गणना करने में चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं ।

राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली सर्वपापहारिणी एकादशी के उत्तम व्रत का पालन करता है, वह जाति से चांडाल होने पर भी संसार में सदा मेरा प्रिय करनेवाला है । जो मनुष्य दीपदान, पलाश के पत्ते पर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं । चौमासे में भगवान विष्णु योगनिद्रा - समाधि में शयन करते हैं, इसलिए मनुष्य को भूमि पर शयन करना चाहिए । सावन में साग, भादों में दही, आश्विन में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए । जो चौमासे में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है ।

राजन् ! एकादशी के व्रत से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, अतः सदा इसका व्रत करना चाहिए । कभी भूलना नहीं चाहिए । 'शयनी' और 'बोधिनी' के बीच में जो कृष्ण पक्ष की एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थ के लिए वे ही व्रत रखने योग्य हैं । अन्य मासों की कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थ के रखने योग्य नहीं होती । उन्हें शुक्ल पक्ष की सभी एकादशियाँ करनी चाहिए ।'' **('पद्म पुराण' से)** □

ढूँढ़ो तो जानें

नीचे दी गयी वर्ग-पहेली में ॐकार की १९ शक्तियों के नाम छिपे हैं, उन्हें खोजिये ।

म	क्ष	या	अ	भो	ग	बि	दि	ल	अ	ई	ति
प	रि	क्रि	च	म	र	ए	वि	स	क	कां	व
र	न	दा	पि	न	त	च्छि	ब	पो	म्य	रे	अ
व	ष	ग	ङ्क	ण	ति	ङ्क	दी	म	र	ल	त
सीं	क्ष	श	लिं	नु	ध	र	प	प्ति	तृ	वा	च्छि
र	लिं	म	पु	आ	ष	प्र	स्वा	वा	स	नी	इ
क	शो	अ	प्री	रु	प	वे	स	म्य	रो	खी	हिं
र	में	ति	डॅ	प्ति	म	श	र	क	र्थ	सा	र
रि	ग	क	अ	क	श्र	अ	स	ति	र	वि	ऐ
श्र	ह	ङ्क	अ	ञ	व	व	न	क्ष	ल	ल	ग
ल	वृ	ए	सी	ग	ङ	ति	ण	त	स	ह	घ
द्वि	क	ठ	म	सा	रा	व	पि	क्र	बु	पृ	र

अंक २३३ की वर्ग-पहेली के उत्तर

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा, सहस्रार ।

बारह प्रकार के गुरु

(पूज्य बापूजी की ज्ञानमयी अमृतवाणी)

'नामचिंतामणि' ग्रंथ में गुरुओं के बारह प्रकार बताये हैं। एक होते हैं धातुवादी गुरु। 'बच्चा ! मंत्र ले लिया, अब जाओ तीर्थाटन करो। भिक्षा माँग के खाओ अथवा घर का खाओ तो ऐसा खाओ, वैसा न खाओ। लहसुन न खाना, प्याज न खाना, यह करना, यह न करना। इस बर्तन में भोजन करना, ऐसे सोना।' - ऐसी विभिन्न बातें बताकर अंत में ज्ञानोपदेश देनेवाले धातुवादी गुरु होते हैं।

दूसरे होते हैं चंदन गुरु। जिस प्रकार चंदन वृक्ष अपने निकट के वृक्षों को भी सुगंधित बना देता है, ऐसे ही अपने सान्निध्य द्वारा शिष्य को तारनेवाले गुरु चंदन गुरु होते हैं। चंदन गुरु वाणी से नहीं, आचरण से हममें संस्कार भर देते हैं। उनकी सुवास का चिंतन करके हम भी अपने समाज में सुवासित होने के काबिल होते हैं।

तीसरे होते हैं विचारप्रधान गुरु। जो सार है वह ब्रह्म-परमात्मा है, असार है अष्टधा प्रकृति का शरीर। प्रकृति का शरीर प्रकृति के नियम से रहे लेकिन आप अपने ब्रह्म-स्वभाव में रहें - इस प्रकार का विवेक जगानेवाले आत्म-विचारप्रधान गुरु होते हैं।

चौथे होते हैं अनुग्रह-कृपाप्रधान गुरु। अपनी अनुग्रह-कृपा द्वारा अपने शिष्यों का पोषण कर दें, दीदार दे दें, मार्गदर्शन दे दें; अच्छा काम करें तो प्रोत्साहित कर दें, गड़बड़ करें तो गुरु की मूर्ति मानो नाराज हो रही है ऐसे गुरु भी होते हैं।

पाँचवें होते हैं पारस गुरु। जैसे पारस अपने स्पर्श से लोहे को सोना कर देता है, ऐसे ही ये गुरु अपने हाथ का स्पर्श अथवा अपनी स्पर्श की हुई वस्तु का स्पर्श कराके हमारे चित्त के दोषों को हरकर चित्त में आनंद, शांति, माधुर्य एवं योग्यता का दान करते हैं।

छठे होते हैं कूर्म अर्थात् कच्छपरूप गुरु। जैसे मादा कछुआ दृष्टिमात्र से अपने बच्चों को पोषित करती है, ऐसे ही गुरुदेव कहीं भी हों अपनी दृष्टिमात्र से, नूरानी निगाहमात्र से शिष्य को दिव्य अनुभूतियाँ कराते रहते हैं। ऐसी गुरुदेव की कृपा का अनुभव मैंने कई बार किया।

सातवें होते हैं चन्द्र गुरु। जैसे चन्द्रमा के उगते ही चन्द्रकांत मणि से रस टपकने लगता है, ऐसे ही गुरु को देखते ही हमारे अंतःकरण में उनके ज्ञान का, उनकी दया का, आनंद, माधुर्य का रस उभरने, छलकने लगता है। गुरु का चिंतन करते ही, उनकी लीलाओं, घटनाओं अथवा भजन आदि का चिंतन करके किसीको बताते हैं तो भी हमें रस आने लगता है।

आठवें होते हैं दर्पण गुरु। जैसे दर्पण में अपना रूप दिखता है ऐसे ही गुरु के नजदीक जाते ही हमें अपने गुण-दोष दिखते हैं और अपनी महानता का, शांति, आनंद, माधुर्य आदि का रस भी आने लगता है, मानो गुरु एक दर्पण हैं। गुरु के पास गये तो हमें गुरु का स्वरूप और अपना स्वरूप मिलता-जुलता, प्यारा-प्यारा लगता है। वहाँ वाणी नहीं जाती, मैं बयान नहीं कर सकूँगा। मुझे जो अनुभूतियाँ हुईं उनका मैं वर्णन नहीं कर सकता। बहुत समय लगेगा फिर भी पूरा वर्णन नहीं कर पाऊँगा।

नौवें होते हैं छायानिधि गुरु। जैसे एक अजगैबी देवपक्षी आकाश में उड़ता है और जिस व्यक्ति पर उसकी ठीक से छाया पड़ जाती है वह राजा बन जाता है ऐसी कथा प्रचलित है। यह छायानिधि पक्षी आकाश में उड़ता रहता है किंतु

हमें आँखों से दिखाई नहीं देता। ऐसे ही साधक को अपनी कृपाछाया में रखकर उसे स्वानंद प्रदान करनेवाले गुरु छायानिधि गुरु होते हैं। जिस पर गुरु की दृष्टि, छाया आदि कुछ पड़ गयी वह अपने-अपने विषय में, अपनी-अपनी दुनिया में राजा हो जाता है। राजे-महाराजे भी उसके आगे घुटने टेकते हैं। यह सामर्थ्य मेरे गुरुदेव में था और मुझे लाभ मिला।

दसवें होते हैं नादनिधि गुरु। नादनिधि मणि ऐसी होती है कि वह जिस धातु को स्पर्श करे वह सोना बन जाती है। पारस तो केवल लोहे को सोना करता है।

एक संत थे गरीबदासजी। वे दादू दयालजी के शिष्य थे। उनको किसी वैष्णव साधु ने मणि दी तो उन्होंने वह मणि फेंक दी।

वैष्णव साधु ने कहा : ''मैं तो तुम्हारी गरीबी मिटाने के लिए लाया था। इतनी तपस्या के बाद मणि मिली थी, तुमने उसे फेंक दिया! कितनी कीमती थी!! अब क्या होगा?''

गरीबदासजी ने कहा : ''बाबा! यह आपके हाथ का चिमटा दिखायें।'' उसे अपने ललाट को छुआया तो चिमटा सोने का बन गया। वैष्णव साधु गरीबदासजी के चरणों में पड़ गये।

अब पारसमणि तो नहीं होता है ललाट, नादनिधि भी नहीं होता। क्या वर्णन करें! मनुष्य के चित्त की कितनी महानता है! ऐसे भी गुरु होते हैं, जिनका ललाट या वाणी नादनिधि बन जाती है। ऐसी-ऐसी वार्ताएँ सुनकर हृदय आनंदित हो जाता है, अहोभाव से भर जाता है कि 'हम कितने भाग्यशाली हैं कि भारतीय संस्कृति के ग्रंथ पढ़ने और सुनने का अवसर मिलता है।'

नादनिधि मणि तो ठीक लेकिन गरीबदासजी का मस्तक नादनिधि कैसे बन गया? वहाँ विज्ञान बेचारा बौना हो जाता है, विज्ञान घुटने टेकने लग जाता है।

ऐसे गुरु मुमुक्षु की करुण पुकार सुन के उस पर करुणा करके उसे तत्क्षण ज्ञान दे देते हैं। मुमुक्षु के आगे स्वर्ण तो क्या है, हीरे क्या हैं, राज्य क्या है? वह तो राज्य और स्वर्ण का दाता बन जाता है। नादनिधि मणि से भी उन्नत, गुरु की कृपा और गुरु का ज्ञान काम करता है। नादनिधि को तो मैं चमत्कारी मानता हूँ लेकिन उससे भी कई गुना चमत्कारी मेरे गुरुदेव की वाणी और कृपा है। मैं उनके चरणों में अब भी नमस्कार करता हूँ। मेरे गुरुदेव की पूजा के आगे नादनिधि मणि, चिंतामणि, पारसमणि कुछ भी नहीं है। पारसमणिवालों के पास इतने लोग नहीं होते हैं।

ग्यारहवें गुरु होते हैं क्रौंच गुरु। जैसे मादा क्रौंच पक्षी अपने बच्चों को समुद्र-किनारे छोड़कर उनके लिए दूर स्थानों से भोजन लेने जाती है तो इस दौरान वह बार-बार आकाश की ओर देखकर अपने बच्चों का स्मरण करती है। आकाश की ओर देख के अपने बालकों के प्रति सद्भाव करती है तो वे पुष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही गुरु अपने चिदाकाश में होते हुए अपने शिष्यों के लिए सद्भाव करते हैं तो अपने स्थान पर ही शिष्यों को गुदगुदियाँ होने लगती हैं, आत्मानंद मिलने लगता है और वे समझ जाते हैं कि बापू ने याद किया, गुरु ने याद किया। ऐसी गुरुकृपा का अनुभव मुझे कई बार हुआ था। मैंने अनुभव किया कि 'गुरुजी कहीं दूर हैं और मेरे हृदय में कुछ दिव्य अनुभव हो रहे हैं।' मन में हुआ कि 'कैसे हो रहा है?' तो तुरंत पता चला कि वहाँ से उनका सद्भाव मेरी तरफ यहाँ पहुँच गया है।

बारहवें गुरु होते हैं सूर्यकांत गुरु। सूर्यकांत मणि में ऐसी कुछ योग्यता होती है कि वह सूर्य को देखते ही अग्नि से भर जाती है, ऐसे ही अपनी दृष्टि जहाँ पड़े वहाँ के साधकों को विदेहमुक्ति देनेवाले गुरु सूर्यकांत गुरु होते हैं। शिष्य को देखकर गुरु के हृदय में उदारता, आनंद उभर जाय और शिष्य का मंगल-ही-मंगल होने लगे, शिष्य

को उठकर जाने की इच्छा ही न हो। गुरु का अपना स्वभाव ही बरसने लगे। **तीरथ नहाये एक फल...** अपनी भावना का ही फल मिलेगा। **संत मिले फल चार...** धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मिलेगा लेकिन आत्मसाक्षात्कारी पुरुष में तो मुझे लगता है कि बारह-के-बारह लक्षण चमचम चमकते हैं। किसी गुरु में एक लक्षण, किसीमें दो, किसीमें तीन लेकिन ब्राह्मी स्थितिवाला तो ओ हो ! जय लीलाशाह भगवान ! जय व्यास भगवान !! ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के चरणों में वंदन ! उनका बड़ा भारी उपकार है, उनका धरती पर रहना ही मनुष्यों के लिए मंगलकारी है। वे बोलें तो भी मंगल है, ऐसे ही कहीं चुप बैठें और केवल दृष्टि डाल दें तो भी उनके संकल्प और उनको छूकर आनेवाली हवाओं से मंगल होता है।

एक गुरु में ऐसे बारह-के-बारह दिव्य गुण भी हो सकते हैं, दो भी हो सकते हैं, चार भी हो सकते हैं। अब आपको कितने प्रकार के गुरु मिले हैं, आप ही सोच लो। मेरे को तो मिल गये मेरे गुरुदेव। यह सब उन्हींका विस्तार है और जो दिखता है उससे भी ज्यादा विस्तार है उनका। जहाँ-जहाँ आपकी और मेरी दृष्टि जाती है उससे भी ज्यादा विस्तार है। अनंत ब्रह्मांड भी उनके एक कोने में पड़े हैं। ऐसे हैं मेरे गुरुदेव !

ऐसे गुरुओं पर कीचड़ उछालनेवाले हर युग में रहे, फिर भी गुरु-परम्परा अभी तक बरकरार है। नानकजी को जेल में डाल दिया। कबीरजी पर लांछन लगाया। बुद्ध पर दोषारोपण किया, कुप्रचार किया। संत नामदेव, ज्ञानेश्वर महाराज का भी खूब कुप्रचार हुआ। संत तुकारामजी महाराज का भी खूब कुप्रचार हुआ। फिर भी वे संत लाखों-करोड़ों के हृदय में अभी भी आदर से विराजमान हैं। लाखों-करोड़ों हृदय उन्हें आदर से मानते हैं। निंदक और कुप्रचारक अपना ही घाटा करते हैं। □

मानस पूजा का क्या कहना !

हर पूजा उत्तम है लेकिन,
मानस पूजा का क्या कहना।
षोडश उपचार भी फीके हैं,
भई इस पूजा का क्या कहना ॥
निर्धन हों, धनी हों गुणवंता,
चाहे हों निपट निराले जी।
इस भावभरी मानस पूजा से,
अपने रब को रिझा लें जी ॥
मन के लड्डू खाकर देखो,
कितने मीठे है क्या कहना।
हैं ठनठनपाल तो क्या गम है,
सोने का सिंहासन गढ़ाओ जी ॥
रेशम के तकिये लगा गुरु को,
फिर पंखुड़ियाँ बरसाओ जी।
हीरे की चमक मोती की दमक,
मोगरे की गमक का क्या कहना ॥
आँसुओं से चरन पखारो,
फिर भावों के हार पहनाओ जी।
श्रद्धा का चंदन भाल सजाओ,
प्रेम दुशाला उढ़ाओ जी ॥
हृदय-मंदिर में बिराजे हरि,
इस अनुपम छवि का क्या कहना।
कंचन थाल में चाँदी का चम्मच,
छप्पन भोग सजाओ जी ॥
और प्रेम से शबरी की नाईं,
अपने प्रभु को जिमाओ जी।
हैं मेवा, मिठाई मधुर मगर,
मन के माखन का क्या कहना ॥
वाणी में मिठास जरूरी नहीं,
कुछ टूटा-फूटा गाओ जी।
हो प्रेम मगन झूमो-नाचो,
संग प्यारेजी को नचाओ जी ॥
बिन दाम ही काम बने,
ऐसी मानस पूजा का क्या कहना।

– 'चाँद' लखनवी, लखनऊ □
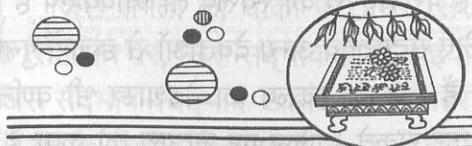
भागकर कहाँ जाओगे ?

एक राजा ने रात में सपना देखा कि एक काली छाया आयी है और कह रही है : ''हे राजन् ! कल शाम को सूरज ढलने से पहले ठीक जगह पर पहुँच जाना।''

राजा ने आश्चर्य से पूछा : ''क्यों ?''

''मैं मृत्यु हूँ। तेरा अंत समय आ गया है। भूलना नहीं, उचित समय पर उचित स्थान पर पहुँच जाना। सूर्यास्त से पहले मैं तुझे लेने आऊँगी।''

घबराहट के कारण राजा पसीने से भीग गया। उठकर सोचने लगा कि 'अरे, उसने स्थान तो बताया नहीं !'

अब मृत्यु यदि स्थान बता देती तो क्या राजा पहुँच जाता ? वह तो कहीं और भाग जाता।

सुबह उठकर राजा ने मंत्रियों को रात्रि का स्वप्न बताकर पूछा : ''मुझे मृत्यु से बहुत डर लगता है, मैं मरना नहीं चाहता हूँ। बताओ, क्या करूँ मैं ?''

मंत्रियों ने सलाह दी कि ''आप घोड़े पर सवार होकर भाग जाओ। राजमहल में सपना आया है तो हो सकता है कि मौत राजमहल के आसपास चक्कर काट रही हो और शाम को आपको अपने साथ ले जाय। राजन् ! भागो...''

राजा भागा, घोड़े को खूब दौड़ाया, शाम तक दौड़ाता ही रहा। अपने राज्य की सीमा से भी दूर निकल गया।

जब सूर्य अस्त होनेवाला था, तब उसने एक जगह अपने घोड़े को रोका। उतरकर घोड़े की पीठ सहलायी और बोला : ''शाबाश मेरे प्यारे ! तू मुझे कितना दूर ले आया। धन्यवाद है तुझे !''

इतने में किसीने राजा के कंधे पर हाथ रखा और कहा : ''तुमको भी धन्यवाद है कि तुम ठीक समय पर आ गये। तुम्हारे घोड़े को भी धन्यवाद है कि वह तुमको उचित समय पर उचित स्थान पर ले आया।''

राजा ने पूछा : ''कौन है तू ?''

''मैं वही हूँ जिसने तुझे सपना दिया था कमबख्त ! तू यहाँ भागकर आया है। आज पूरा दिन था तेरे पास। राजा परीक्षित की तरह तू सद्गुरु की शरण में भी जा सकता था, उनसे ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुन सकता था, उनके श्रीमुख से आत्मज्ञान की दीक्षा लेकर अपना अंतकाल सुधार सकता था। 'गीता' में भगवान ने कहा है :

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

'जो पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है - इसमें कुछ भी संशय नहीं है।' (गीता : ८.५)

ऐसा भी तो कर सकता था ! परंतु जिससे दूर भागना चाहता था अनजाने में उसीके पास आ गया।''

यह एक राजा की कहानी नहीं है, सबकी कहानी है। निगुरे लोग जिस दुःख से दूर भागना चाहते हैं, सद्गुरु और भक्ति के अभाव में उसी दुःख के पास पहुँच जाते हैं। जब पता चलता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। अतः समय रहते किन्हीं समर्थ महापुरुष, अहैतुकी करुणा बरसानेवाले सद्गुरु के चरणों में पहुँच जाइये। वे आपको वहाँ पहुँचा देंगे जहाँ मौत भी आपका कुछ बिगाड़ नहीं सकती तो साधारण मुसीबतों की बात ही क्या है ! □

वह महिमा जो है अगाध !

क्या कभी कोई सूर्य के शरीर में भी उबटन लगा सकता है ? फूलों से भला कल्पवृक्ष का कहाँ तक शृंगार किया जा सकता है ? क्षीर-सागर का आतिथ्य भला किस प्रकार के पकवानों से किया जा सकता है ? चंदन पर किस चीज का लेप लगाया जा सकता है ? अमृत का कौन-सा अन्न पकाया जा सकता है ? क्या आकाश को और भी ऊपर उठाने की कोई युक्ति हो सकती है ? ठीक इसी प्रकार श्रीगुरुदेव के माहात्म्य का पूरा-पूरा आकलन करने के लिए कहाँ और कौन-सा साधन प्राप्त हो सकता है ? **– संत ज्ञानेश्वरजी**

साधकों को सद्गुरु के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । उन्हें शीघ्र ही उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिए । सद्गुरु ऐसे होते हैं कि शरणार्थी को तत्काल अपने ही जैसा कर देते हैं, उन्हें कोई समय नहीं लगता । अतः लोहे को सोना बनानेवाले पारस की उपमा भी सद्गुरु को दे नहीं सकते, उनकी महिमा अगाध है । तुकाराम कहते हैं, ऐसे अंधे हैं ये जन जो सद्गुरु जैसे सच्चे भगवान को भूल गये । **– संत तुकारामजी**

वस्तुतः सद्गुरु का स्वरूप और सामर्थ्य शाश्वत है और अन्य देवता कल्पांत में माया में विलीन हो जाते हैं, उनका सामर्थ्य अशाश्वत है । इसलिए सभी देवताओं से सद्गुरु का सामर्थ्य अधिक है । अन्य सब देवी-देवता मनुष्य के कल्पित हैं और मंत्रों द्वारा ही उन्हें प्रतिष्ठित किया गया है पर सद्गुरु का स्वरूप तो निर्विकल्प है । इसलिए सद्गुरुदेव अन्य देवताओं से हजारों गुना श्रेष्ठ हैं । उनके स्वरूप का वेदशास्त्र भी वर्णन नहीं कर सकते । जिस पर सद्गुरु की कृपा है, उस पर किसीका जोर नहीं चल सकता ।

– समर्थ रामदासजी

गुरु पूरा पाईऐ वडभागी ॥
गुर की सेवा दूखु न लागी ॥
गुर का शबदु न मेटै कोइ ॥
गुरु नानकु नानकु हरि सोइ ॥

– गुरुवाणी (गुरु ग्रंथ साहिब)

एक ही अंतःकरण के भीतर विविध प्रकार की अग्नियाँ हैं, यथा - क्रोधाग्नि, कामाग्नि आदि । सद्गुरु का अंतःकरण इन सभी प्रकार की अग्नियों से परे होता है, शांत होता है । उनके आदेश के अनुसार साधना करने से सभी प्रकार की अग्नियाँ शांत हो जाती हैं । **– संत रज्जबजी**

उत्तम शिष्य चिंतन करने से गुरु की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, मध्यम शिष्य दर्शन करने से और निकृष्ट शिष्य प्रश्न करने से शक्ति प्राप्त करते हैं । हमारे यहाँ गुरु से प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं मानी जाती । गुरु की सेवा करें और उनका चिंतन करें । जब गुरु में अनुराग है - गुरु हमारे हैं तो उनके गुण हमारे हैं ही । **– श्री उड़िया बाबाजी**

जैसे कभी किसी दूर देश, सड़क से पैदल जाना हो तो लगता है कैसे पहुँचेंगे ? ऐसी हालत में गुरु रास्ता दिखा देते हैं ।

किसीने आनंदमयी माँ से कहा : ''माँ ! कभी-कभी वह रास्ता बड़ा लम्बा मालूम पड़ता है ।''

''अगर लम्बा मालूम भी हो तो समझ लो यही तुम्हारे लिए ठीक रास्ता है । तुम नहीं जानते रास्ता और कितना लम्बा होता, गुरु ने कृपा करके दो-एक ही चक्कर देकर आसान कर दिया है ।''

– माँ आनंदमयी

जिस समता की चौकी पर, जिस सरलता के सिंहासन पर, जिस सद्भाव की ऊँचाइयों पर, जिस सद्भाव-चिद्भाव-आनंदभाव की गहराइयों में आपके गुरुदेव विराजमान हैं, वहाँ बैठने की कोशिश आप कीजियेगा तो आपका गुरु के साथ सान्निध्य बना रहेगा।

– स्वामी श्री अखंडानंद सरस्वती

गुरु की प्राप्ति में एकमात्र गुरु की आवश्यकता ही हेतु है। अतः गुरु की आवश्यकता ही गुरु से मिला देती है, यह निर्विवाद सत्य है।

– स्वामी शरणानंदजी महाराज

जो भगवान को ढूँढ़ने जाता है, वह भगवान को ढूँढ़ता ही रहता है पर जो गुरु की सेवा करता है, उसको भगवान ढूँढ़ने आते हैं कि वह कहाँ सेवा कर रहा है। **– स्वामी मुक्तानंदजी**

परमात्मा में तुम्हारी आँखें काम न करेंगी। गुरु दिखायेंगे, गोविंद को गुरु ही लखाते हैं। सद्गुरु परमात्मा को जानने के माध्यम हैं, झरोखा हैं। गुरु को कामनापूर्ति का साधन न बनाओ। धन, पद, संयोग, प्रतिष्ठा एवं मुक्ति भी न चाहो। आग्रह अहंकार ही में होता है। अहं मिटने पर परमात्मा ही रहेगा। गुरु द्वार है परमात्मा से मिलने का। **– संत पथिकजी महाराज**

गुरु का दर्शन मंगलकारी,
जनम मरण के संकट हारी।
गुरु का दर्शन सब फलदाता,
जनम जनम का पाप मिटाता।
गुरु का दर्शन करत निहाला,
देखन से हो भाग विशाला।
गुरु का दर्शन है अति शीतल,
देखत मन की जावे जल जल।
गुरु का दर्शन जो जन देखे,
कह टेऊँ जम द्वार न पेखे॥

– साँई टेऊँरामजी महाराज □

अब आत्मकृपा ही शेष

(पूज्य बापूजी की पावन अमृतवर्षा)

एक बार समर्थ गुरु रामदास बाबा विचरण करते हुए किसी अनजान जगह पर पहुँच गये। भगवच्चर्चा, भगवन्नाम-संकीर्तन करना-कराना यह तो महापुरुषों का स्वभाव ही होता है। धीरे-धीरे उनके सत्संग में काफी भीड़ होने लगी। उनके पास हनुमानजी आते थे। उन्होंने सोचा कि 'मुझे तो हनुमानजी के दर्शन हो जाते हैं, क्यों न इन बेचारों को भी दर्शन करा दूँ !'

एक दिन बाबाजी ने कहा : ''हनुमानजी ! आप मुझे तो दर्शन देते हो, बातें भी करते हो, कभी मेरे भक्तों को भी दर्शन दो न !''

हनुमानजी : ''जब कथा में भगवच्चर्चा ही होगी, दूसरी कोई जगचर्चा नहीं होगी तब मैं तुम्हारे भक्तों को दर्शन दूँगा।'' बाबाजी तो खुश हो गये कि अब सभीको हनुमानजी के दर्शन होंगे।

दूसरे दिन घोषणा कर दी कि 'आज रात को नगर के बाहर खुले मैदान में हरि-कथा होगी।'

रात्रि को धीरे-धीरे बहुत लोग आ गये। प्रकाश के लिए लालटेनें आदि लगा दीं। महाराज ने सोचा कि 'नये-नये लोग हैं, इनको तात्त्विक सत्संग तो समझ में आयेगा नहीं।' इसलिए कथा न करके केवल भगवन्नाम-कीर्तन ही कराते रहे क्योंकि भगवन्नाम-कीर्तन कलियुग में सबको फलता है।

निगुरे लोग बोले : ''कीर्तन तो हम घर में भी कर लेंगे। महाराज तो कुछ बोलते नहीं, केवल कीर्तन करा रहे हैं। हनुमानजी कब आयेंगे, कैसे आयेंगे, क्या पता आयेंगे कि नहीं आयेंगे !''

निगुरे लोगों की भीड़ थी, देखते-देखते सब लोग उठ-उठ के चले गये ।

जिसने अपने घर से लाकर बिछातें (दरियाँ) बिछायी थीं, वह भी बोला : ''अब क्या आयेंगे हनुमानजी, महाराज तो अकेले बच गये हैं !''

बाबाजी आँखें बंद करके कीर्तन किये जा रहे थे । कभी चलते हैं तो कभी रुक जाते हैं, इस प्रकार टहल-टहलकर कीर्तन किये जा रहे थे । महाराज जब कीर्तन करते-करते एक तरफ जाते तो बिछातवाले दूसरी तरफ से बिछात उठा लेते, उधर जाते तो इधर से उठा लेते । इस तरह सारी दरियाँ लेकर भगतड़े भाग गये ।

हनुमानजी आये, बोले : ''मैं आ गया हूँ ।''

''प्रभु ! मेरे भक्तों को भी दर्शन दीजिये ।''

''आप तो बस आँखें बंद किये कीर्तन कर रहे हो, कहाँ हैं आपके भक्त जो मैं उनको दर्शन दूँ ?''

देखा तो कोई था ही नहीं, सब भाग गये थे ! महाराज हँस पड़े, बोले : ''आपने ऐसा क्यों किया ? जब हमारे भक्त थे तब क्यों नहीं आये ?''

बोले : ''देव का दर्शन करने की जिसकी पुण्याई होगी वही तो रहेगा । आपने नयी जगह पर कीर्तन किया, सब निगुरे लोग आये थे, नये-नये भगतड़े थे । वे कीर्तन तो कर नहीं रहे थे, उनको तो मुफ्त में दर्शन करना था इसलिए हम नहीं आये । गुरु की कृपा के बिना, संतों की आज्ञानुसार चले बिना भगवान तो क्या भगवान के सच्चे भक्त भी नहीं मिल पाते हैं । मैं भी वही भगवत्स्वरूप हूँ । भगवान श्रीरामजी ने मुझे आत्मसाक्षात्कार करा दिया है । उनकी कृपा से मैं अपने को शरीर नहीं मानता हूँ । मैं आत्मा हूँ, चैतन्य हूँ ।''

हनुमानजी और रामदासजी के बीच रात भर खूब सत्संग व आध्यात्मिक चर्चा चली । प्रभात होते-होते हनुमानजी चले गये । रामदासजी ने तो चाहा, फिर भी निगुरे लोगों ने क्या फायदा लिया ! ऐसे ही हम भी चाहते हैं कि आप सब लोग अपने-आपका दर्शन कर लें, आत्मसाक्षात्कार कर लें, अपना मंगल कर लें ।

वे चाहते सब झोली भर लें,
निज आत्मा का दर्शन कर लें ।

साक्षात्कार इतना दुर्गम नहीं है; हाँ, अटपटा जरूर है । इसमें तीन कृपाओं - ईश्वरकृपा, शास्त्रकृपा और गुरुकृपा की आवश्यकता तो होती ही है लेकिन जब तक आप आत्मकृपा नहीं करेंगे, जब तक आप अपने अंतःकरण के अंधकार को दूर करने के लिए कटिबद्ध नहीं होंगे, तब तक तीन सौ तैंतीस करोड़ कृष्ण अवतार ले लें फिर भी आपको परम लाभ नहीं होगा ।

अपने दीपक आप बनो, अपने उद्धारक आप बनो । आप स्वयं हिम्मत करोगे तभी गुरुकृपा और भगवत्कृपा पचेगी । छूमंतर थोड़े ही हो जायेगा !

सचमुच, वे लोग तीन गुना भाग्यशाली हैं जिन्हें अमूल्य मानव-तन के साथ-साथ ईश्वरकृपा ने सत्संग की उपलब्धि कराकर मोक्ष पाने की तीव्र लगन दी है । मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का संग भी प्राप्त हुआ है, ऐसे लोगों को करने के लिए अब केवल आत्मकृपा ही शेष बचती है । अतः करो हिम्मत ! मारो छलाँग !

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।

(मुण्डकोपनिषद् : ३.२.४)

दुर्बलता छोड़ो । हीन विचारों को तिलांजलि दो । उठो... जागो...

परमात्मा कहीं आकाश में, किसी जंगल, गुफा या मंदिर-मस्जिद-चर्च में नहीं बैठा है । वह चैतन्यदेव आपके हृदय में ही स्थित है । वह कहीं खो नहीं गया है कि उसे खोजने जाना पड़े । जिन महापुरुषों ने उस परम देव को आत्मरूप से जान लिया है उनके चरणों में पहुँचकर, उनसे दीक्षा ले के साधन-भजन करे, उनके मार्गदर्शनानुसार दृढ़ता के साथ चल पड़े तो हनुमानजी के दर्शन तो क्या, हनुमानजी जिससे हनुमानजी हैं उस आत्मतत्त्व को आत्मरूप से जानकर व्यक्ति जीवन्मुक्त हो सकता है । ॐ... ॐ... ॐ...

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम परमात्मा पाने के लिए । नश्वर पाया तो क्या पाया ! ❑

साधना का अमृतकाल : चतुर्मास

(३० जून से २५ नवम्बर)

केवल पुण्यप्रद ही नहीं, परमावश्यक है चतुर्मास में साधना

आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक भगवान विष्णु योगनिद्रा द्वारा विश्रांतियोग का आश्रय लेते हुए आत्मा में समाधिस्थ रहते हैं। इस काल को 'चतुर्मास' कहते हैं।

संस्कृत में 'हरि' शब्द सूर्य, चन्द्र, वायु, विष्णु आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। वर्षाकाल की उमस हरि (वायु) के शयनार्थ चले जाने के कारण उनके अभाव में उत्पन्न होती है। यह अन्य किसी भी ऋतु में अनुभव नहीं की जा सकती। सर्वव्यापी हरि हमारे शरीर में भी अनेक रूपों में विद्यमान रहते हैं। शरीरस्थ गुणों में सत्त्वगुण हरि का प्रतीक है। वात-पित्त-कफ में पित्त को हरि का प्रतिनिधि माना गया है। चतुर्मास में ऋतु-परिवर्तन के कारण पित्तरूप अग्नि की गति शांत हो जाने के कारण शरीरगत शक्ति सो जाती है। इस ऋतु में सत्त्वगुणरूपी हरि का शयन (मंदता) तो प्रत्यक्ष ही है, जिससे रजोगुण व तमोगुण की वृद्धि होने से इस ऋतु में प्राणियों में भोग-विलास प्रवृत्ति, निद्रा, आलस्य अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। हरि के शरीरस्थ प्रतिनिधियों के सो जाने के कारण (मंद पड़ने से) अनेक प्रकार की शारीरिक व मानसिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं, जिनके समाधान के लिए आयुर्वेद में इस ऋतु हेतु विशेष प्रकार के आहार-विहार की व्यवस्था की गयी है।

सत्त्वगुण की मंदता से उत्पन्न होनेवाली दुष्प्रवृत्तियों के शमन हेतु चतुर्मास में विविध प्रकार के व्रत, अनुष्ठान, संत-दर्शन, सत्संग, संत-सेवा, यज्ञादि का आयोजन होता है, जिससे सत्त्व-विरहित मन भी कुमार्गगामी न बन सके। इन चार महीनों में विवाह, गृह-प्रवेश, प्राण-प्रतिष्ठा एवं शुभ कार्य बंद रहते हैं।

चतुर्मास में विशेष महत्त्वपूर्ण : विश्रांतियोग

'स्कंद पुराण' के अनुसार चतुर्मास में दो प्रकार का शौच ग्रहण करना चाहिए। जल से नहाना-धोना बाह्य शौच है तथा श्रद्धा से अंतःकरण शुद्ध करना आंतरिक शौच है। चतुर्मास में इन्द्रियों की चंचलता, काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य (ईर्ष्या) विशेष रूप से त्याग देने योग्य हैं। इनका त्याग सब तपस्याओं का मूल है, जिसे 'महातप' कहा गया है। ज्ञानीजन आंतरिक शौच के द्वारा अपने अंतःकरण को मलरहित करके उसी आत्मा-परमात्मा में विश्रांति पाते हैं जिसमें श्रीहरि चार महीने समाधिस्थ रहते हैं।

पूज्य बापूजी कहते हैं : ''भगवान नारायण चर्तुमास में समाधि में हैं तो शादी-विवाह और सकाम कर्म वर्जित माने जाते हैं। सेवा, सुमिरन, ध्यान आपको विशेष लाभ देगा। भगवान नारायण तो ध्यानमग्न रहते हैं और नारायण-तत्त्व में जगे हुए महापुरुष भी चतुर्मास में विशेष विश्रांतियोग में रहते हैं, उसका फायदा उठाना। आपाधापी के कर्मों से थोड़ा अपने को बचा लेना।'' ❑

सुनहरा अवसर !

शहर के कोलाहल से दूर, पवित्र आध्यात्मिक स्पंदनों से युक्त विभिन्न संत श्री आशारामजी आश्रमों में मंत्रानुष्ठान तथा मौनमंदिर साधना के द्वारा अनेक साधकों को लौकिक-अलौकिक अद्‌भुत लाभ हुए हैं। चतुर्मास साधना का अमृतकाल है। इसमें साधकों को इन साधनाओं का लाभ अवश्य लेना चाहिए।

पुष्कर (डुंगरिया), पंचेड़, सुमेरपुर, हरिद्वार आदि एकांत और प्रदूषणरहित वातावरणवाले संत श्री आशारामजी आश्रमों में वहाँ की समितियाँ व साधक मिलकर व्यवस्था करें और अनुष्ठानवाले अनुष्ठान का लाभ लें।

(रंगीन आवरण पृष्ठ २ से 'प्रेम का छलकता सागर' का शेष)

बापूजी की महिमा मधुर एवं दिव्य है । वे हमें दीक्षा देकर नया जन्म देते हैं, सत्संग-मार्गदर्शन द्वारा जन्म को सार्थक बनाने की कला भी सिखाते हैं और अपने असीम योग-सामर्थ्य द्वारा हमारे जीवन को कँटीलें मार्गों में फँसने से बचा लेते हैं । आप जीवन के हर मोड़ पर सबल सहारा प्रदान करते हैं ।

प्रेमावतार बापूजी कहते हैं : ''आप व्यवहार करते समय सबसे अपनापन रखें क्योंकि सुखी जीवन के लिए विशुद्ध, निःस्वार्थ प्रेम ही असली खुराक है । संसार इसीकी भूख से मर रहा है । अतः अपने हृदय के आत्मिक प्रेम को हृदय में ही मत छिपाकर रखो, उदारता के साथ उसे बाँटो । इससे जगत का बहुत-सा दुःख दूर हो जायेगा ।''

ऐसे पूज्य बापूजी महा महिमावान एवं करुणावतार हैं, प्रेम के अथाह सागर हैं । उनको साधारण जड़ बुद्धिवाले नहीं समझ सकते । काँटें चुभना नहीं छोड़ते हैं तो फूल महकना थोड़े ही छोड़ देंगे ! निंदक जहर उगलना नहीं छोड़ते हैं तो बापूजी सबको करुणा और प्रेम बाँटना थोड़े ही छोड़ देंगे ! निंदकरूपी काँटों के बीच भी आत्मारामी अलमस्त संत पूज्य बापूजी गुलाब की तरह खिलकर सत्संग, सेवा, प्रेम, भक्ति और ज्ञान का परिमल फैलाते ही जाते हैं ।

बापूजी के सत्संग का नजारा देखकर बड़े-बड़े राजनेता कह उठते हैं : ''१०-२० हजार लोगों को अपनी सभा में एकत्रित करना हो तो हमें धनपाश, बलपाश, वायदों के पाश आदि का प्रयोग करना पड़ता है, फिर भी लोग जुट नहीं पाते । धन्य है बापूजी का यह प्रेमपाश, जिसमें बँधकर व्यक्ति आनंदित होते हुए मुक्ति के रास्ते खिंचा चला आता है और सत्संग में बैठ जाता है तो उठने का नाम ही नहीं लेता । जहाँ हमारे कार्यकर्ता भीड़ जुटाने की चिंता में लगे रहते हैं, वहीं यहाँ के सेवक व्यवस्था बढ़ाने के चिंतन में लगे रहते हैं ।''

बापूजी के प्रेम के कारण ही तो लोग भूख-प्यास की चिंता किये बिना, कभी प्रकृति-सर्जित सर्दी, गर्मी या बरसात जैसे विघ्नों की परवाह किये बिना तो कभी मानव-सर्जित कर्फ्यू आदि से भयग्रस्त हुए बिना घंटों-घंटों पूज्यश्री के इंतजार में पलकें बिछाये बैठे रहते हैं । क्या उन्हें कोई डंडे के बल पर अथवा रुपये-पैसे का लालच देकर बैठा सकता है ? नहीं, यह तो बापूजी का प्रेम ही है जो उन्हें उठने नहीं देता । बापूजी मंच पर पधारकर जैसे ही अपनी प्रेमाभक्ति का प्रसाद भक्तों पर उँडेलते हैं, वैसे ही भक्तों के अंदर भी प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगती है और वे झूमने लगते हैं ।

प्रेमावतार पूज्य बापूजी कहते हैं : ''मेरे पास वशीकरण मंत्र है लेकिन वह कोई जादू-टोनेवाला नहीं है अपितु वशीकरण मंत्र 'प्रेम' है ।''

'प्रेम' - ढाई अक्षर के इस जादुई शब्द का विच्छेद करें तो बनता है - प + र + म = परमात्मा में रम जाना । परम अर्थात् परमात्मा के साथ अपना एकत्व अनुभव करते हुए प्रत्येक जीव में, प्रत्येक प्राणी में अपना ही प्यारा स्वरूप निहारते हुए आत्मभाव से उसका हित करना ही वास्तविक प्रेम है और ऐसा प्रेम केवल आत्मनिष्ठ महापुरुष ही कर सकते हैं । ऐसा ही प्रेम करते हैं आत्मनिष्ठ पूज्य बापूजी अपने भक्तों से, समाज से, विश्व से, प्राणिमात्र से । पूज्य बापूजी के हृदयसागर से उमड़-उमड़कर सतत ऐसा प्रेम छलकता है कि कोई भी उनका हुए बिना नहीं रह पाता । जहाँ आज मानवमात्र सांत्वना, प्रसन्नता और शांति की एक छोटी-सी बूँद के लिए तरस रहा है, वहीं बापूजी की एक प्रेमभरी मीठी मुस्कान विशाल जनसमुदाय को महान आश्वासन, आनंद-उल्लास और मधुर शांति के अथाह महासागर में गोते लगवाती है ।

आपश्री मंच पर कई बार अपना प्रेमभाव व्यक्त करते हुए कहते हैं : ''हजार-हजार बातें मैं तुम्हारी मानता हूँ कि शायद कभी तुम भी मेरी एक बात मान लो। तुम ही शाश्वत आत्मा हो और परमात्मा के सनातन अंश हो। बस, इतना जानकर अपने सदा-सदा के मुक्त स्वरूप को जान लो और मुक्तात्मा हो जाओ।''

आज आपश्री के इस परम प्रेम के पात्र केवल साधक-भक्त ही बने हैं ऐसी बात नहीं है, बल्कि हमारे लाखों पिछड़े, तिरस्कृत, अनाथ एवं आदिवासी भाई-बहन भी आपके करकमलों से पाते हैं जीवनोपयोगी वस्तुएँ एवं सांत्वना तथा मुखकमल से पाते हैं प्रेमभरी मीठी मुस्कान ! साथ में आप उन्हें देते हैं भगवन्नाम की दीक्षा और दिखाते हैं स्वस्थ, सुखी एवं उन्नत जीवन का सरल मार्ग ! असीम प्रेम के सागर आपश्री के प्रेम को दायरे में कैसे बाँधा जा सकता है ! और इससे वंचित भला कौन रह सकता है ? चाहे पशु हो या पक्षी या हो कोई हिंसक जानवर, सभी आपके प्रेम-साम्राज्य में आकर अपना प्रकृतिप्रदत्त स्वभाव भूल जाते हैं और रम जाते हैं आपके प्रेम में। महाराजश्री के प्रेम के वश होकर तो विषैला सर्प भी उन्हें प्रेम से निहारता है। बापूजी घने जंगलों में साधना करते थे तब कई बार हिंसक पशु सामने आ जाते परंतु उन्होंने कभी भी बापूजी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाया।

अजब-गजब है आपका यह प्रेम-मंत्र ! सचमुच यह लाबयान है ! इसका वर्णन करते-करते हाथ जुड़ जाते हैं, होंठ सिल जाते हैं, मस्तक झुक जाता है और आपश्री से प्राप्त इसी प्रेम के आँसुओं द्वारा आपश्री के श्रीचरणों में प्रेमांजलि अर्पण होने लगती है :

कितनी महिमा गायें बापू, कितना करें सत्कार।
एक ही है जिह्वा मेरी, तेरे गुण हैं बेशुमार ॥
महिमा तुम्हारी कैसे गायें, वाणी रुक-रुक जाये।
माँगें तो क्या माँगें तुमसे, मस्तक झुक-झुक जाये ॥

हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...

हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी, गुरुकृपा ! जय जय हो तेरी।
तुमने अनेकों जन्म की बिगड़ी बनायी है मेरी।
हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...
गुरुकृपा बिन धक्के मुझे देता रहा संसार था।
यदि गुरुकृपा मिलती नहीं यह जन्म भी बेकार था।
हे गुरुकृपा ! तू धन्य है जिसने है मोड़ी गति मेरी।
हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...
ले ले जनम बहु बार मैं मरता रहा संसार में।
अनवरत चक्कर चल रहा, ना बच सका यम मार से।
पर गुरुकृपा इस बार जीवन नाव पार करे मेरी।
हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...
हे गुरुकृपा ! महिमा तुम्हारी वेदशास्त्र बता रहे।
गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम् गा रहे।
मंगल किया करुणा कृपा कर खोल दी किस्मत मेरी।
हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...
हे गुरुकृपा ! तू सदा रहना, छोड़कर जाना नहीं।
तेरे बिना सुख-शांति जीवन में न मेरे है कहीं।
जब बुद्धि में अविवेक हो, गुरुकृपा सम्बल हो मेरी।
हे गुरुकृपा ! जय हो तेरी...

– ओमप्रकाश मिश्र, अहमदाबाद

व्रत, पर्व और त्यौहार

१८ जून : सोमवती अमावस्या (शाम ६-३५ से १९ जून के सूर्योदय तक)
२० जून : दक्षिणायन (पुण्यकाल : सूर्यो. से सूर्यास्त)
२२ जून : गुरुपुष्यामृत योग (२२ जून प्रातः ४-१७ से सूर्योदय तक)
२७ जून : बुधवारी अष्टमी (सूर्योदय से रात्रि ८-०७)
३ जुलाई : गुरुपूर्णिमा
११ जुलाई : बुधवारी अष्टमी (सूर्यो. से रात्रि ८-२२)
१७ जुलाई : चतुर्दशी-आर्द्रा नक्षत्र योग (सुबह ७-५० से १८ जुलाई सुबह ९-०८ तक)
इस योग में ॐकार का जप अक्षय फल देता है।
१९ जुलाई : गुरुपुष्यामृत योग (सुबह १०-४६ से २० जुलाई के सूर्योदय तक)

आध्यात्मिक संत आशारामजी बापू ने हरिद्वार में देश भर से आये लाखों श्रद्धालुओं को दिया प्रवचन

✻ बापूजी बोले : "सत्संग से जागता है सौभाग्य और संत-दर्शन से मिलता है लाभ।" ✻ भक्तों ने लगाये ध्यान व भक्ति की गंगा में गोते

हिन्दुस्तान, हरिद्वार, ७ मई। आध्यात्मिक संत पूज्य आशारामजी बापू ने कहा : "जैसा ज्ञान होगा वैसी ही इच्छा और कर्म होते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान से मुक्ति मिलती है। सद्गुरु की दीक्षा से आत्मसाक्षात्कार होता है और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।"

गंगा-तट पर पूनम दर्शन-सत्संग में लाखों श्रद्धालुओं का सैलाब उमड़ा। वैशाखी पूर्णिमा पर श्रद्धालुओं ने जहाँ गंगा में डुबकी लगायी, वहीं बापूजी के सत्संग में ध्यान, भक्ति की गंगोत्री में गोते लगाकर मन को ज्ञान, आनंद, शांति से तृप्त किया।

रेलगाड़ी पर सवार होकर पहुँचे बापू

सत्संग-स्थल पर लाखों श्रद्धालुओं को बापूजी के निकट से सुलभ दर्शन के लिए विशेष रेलगाड़ी बनायी गयी, जो बिना धुआँ छोड़े पटरियों पर दौड़ी। रेलगाड़ी में बापूजी को देख भक्त भाव-विभोर हो निहाल हुए।

नशामुक्ति का साहित्य बाँटा

सत्संग-स्थल पर आश्रम द्वारा आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा उपलब्ध करायी गयी, जिसका लाभ नगरवासियों के साथ दूर-दराज से आये ग्रामीणों ने लिया। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के नशों से ग्रस्त लोगों को उनसे मुक्त कर नशामुक्त समाज के निर्माण के लिए नशामुक्ति साहित्य व सी.डी. बाँटी गयी और पोस्टर लगाये गये।

आशारामजी बापू के सान्निध्य में...

नारद जयंती पर श्रद्धालुओं को सत्संग का अमृतपान कराते हुए बापूजी ने कहा : "ब्रह्माजी के मानस-पुत्र देवर्षि नारदजी ने अपने दिव्य कार्यों से सर्वजनहिताय-सर्वजनसुखाय कर्म करने का संदेश दिया। वे आदर्श पत्रकारिता के गुरु हैं तथा समाज में अहिंसा, सत्य फैलाने का समाचार देते हैं। कर्म में कर्तापन का भाव तो कर्ता को अहंकारी बना देता है। धन में वृत्ति जोड़ने से व्यक्ति लोभी हो जाता है। परमात्मा का साक्षात्कार करनेवाला ही वास्तव में धनी होता है। सत्संग ही ऐसा स्थान है, जहाँ पर सच्चे सुख का पता चलता है।"

गंगा, गीता और गाय से होगा विकास

दैनिक जागरण, हरिद्वार, ७ मई। संत आशारामजी बापू ने कहा : "गंगा, गीता और गाय को महत्त्व देने से ही देश का सर्वांगीण विकास होगा। ये तीनों भारत की संस्कृति के प्रतीक हैं।"

आध्यात्मिक ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग : बापू

अमर उजाला, ७ मई। देश भर से आये लाखों श्रद्धालुओं को सम्बोधित करते हुए पूज्य संतश्री ने कहा : "मुक्ति पाने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करना जरूरी है।" अमृतधारा बहाते हुए बापूजी बोले : "सुख-दुःख, लाभ-हानि, बचपन-जवानी-बुढ़ापा आते-जाते रहते हैं। जो इनको जानता है, वह न जाता है न आता है। आत्मा और परमात्मा वही है।"

दर्शन कर तोड़ा व्रत

देश भर से आये लाखों पूनम व्रतधारियों ने गंगा-तट पर बापूजी का दर्शन कर व्रत तोड़ा। उपस्थित जनता ने जमीन पर लेटकर बापू को दंडवत् प्रणाम किया।

आध्यात्मिक ज्ञान श्रेष्ठ

राष्ट्रीय सहारा, हरिद्वार, ७ मई। सत्संग के प्रथम दिन ही लाखों श्रद्धालुओं का सैलाब उमड़ पड़ा। बापूजी ने कहा : "आध्यात्मिक ज्ञान के बिना आधिभौतिक, आधिदैविक सब कुछ हो तो भी आत्मसंतोष नहीं मिल सकता।"

पलाश के फूलों का शरबत बाँटा

१३२ प्रकार के रोगों को दूर करनेवाली औषधि हरड़ रसायन तथा ब्रह्मवृक्ष पलाश का शरबत बाँटा गया। ये दोनों हृदय के लिए बलदायक व श्रमहर हैं। पलाश शरबत उत्तम पित्तशामक, तुरंत स्फूर्तिदायक है व ग्रीष्म में होनेवाले रोगों से बचाता है।

लाभकारी मूली

ताजी व कोमल मूली त्रिदोषशामक, जठराग्निवर्धक व उत्तम पाचक है। गर्मियों में इसका सेवन लाभदायी है। इसका कंद, पत्ते, बीज सभी औषधीय गुणों से सम्पन्न हैं। ताजी व कोमल मूली ही खानी चाहिए। पुरानी, सख्त व मोटी मूली त्रिदोषप्रकोपक, भारी एवं रोगकारक होती है।

इसके १०० ग्राम पत्तों में ३४० मि.ग्रा. कैल्शियम, ११० मि.ग्रा. फास्फोरस व ८.८ मि.ग्रा. लौह तत्त्व पाया जाता है। प्रचुर मात्रा में निहित ये खनिज तत्त्व दाँत एवं हड्डियों को मजबूत बनाते हैं और रक्त को बढ़ाते हैं। इसके पत्ते सलाद के रूप में अथवा सब्जी बनाकर भी खाये जा सकते हैं। पत्तों के रस का भी सेवन किया जाता है। इसके पत्ते गुर्दे के रोग, मूत्र-संबंधी विकार, उच्च रक्तचाप, मोटापा, बवासीर व पाचन-संबंधी गड़बड़ियों में खूब लाभदायी हैं।

गर्मी में अधिक पसीना आने से शरीर में सोडियम की मात्रा कम हो जाती है। मूली में ३३ मि.ग्रा. सोडियम पाया जाता है, अतः मूली खाने से इसकी आपूर्ति सहजता से हो जाती है और थकान भी मिट जाती है।

मूली के घरेलू प्रयोग

मोटापा : मूली के १०० मि.ली. रस में १ नींबू का रस व चुटकी भर नमक मिलाकर सुबह खाली पेट पीने से मोटापा कम होता है।

पेट के विकार : मूली के ५० मि.ली. रस में १ चम्मच नींबू का रस व आधा चम्मच अदरक का रस मिलाकर भोजन से आधा घंटा पूर्व लेने से पेट की गड़बड़ियों जैसे अजीर्ण, अम्लपित्त, गैस, दर्द, कब्ज, उलटी आदि में शीघ्र राहत मिलती है।

मूली को कद्दूकश कर काली मिर्च, नमक व नींबू निचोड़कर कचूमर बनाकर खाने से भी पेट की इन तकलीफों में राहत मिलती है।

भूखवर्धन व पाचन : भूख न लगती हो तो मूली उबालकर सूप बना लें। उसमें काली मिर्च, धनिया, जीरा व हलका-सा नमक मिलाकर भोजन से पहले पियें। इससे भूख खुलकर लगेगी व अन्न का पाचन भी सुगमता से होगा।

गाँठें : शरीर में चर्बी की गाँठें बन गयी हों तो मूली का रस गाँठों पर खूब रगड़ें। रस में नींबू व नमक मिलाकर पियें। गाँठें पिघल जायेंगी। मावा, मिठाई व मेवों का सेवन न करें।

गले के रोग : गले में खराश हो या गला बैठ गया हो तो मूली कद्दूकश कर हल्दी मिलाकर खायें।

जुकाम : बार-बार सर्दी, जुकाम, खाँसी होती हो तो मूँग व मूली का सूप बना के काली मिर्च, सेंधा नमक एवं अजवायन मिलाकर पियें।

मूली के पत्तों के प्रयोग

गुर्दे के रोग : गुर्दे की कार्यक्षमता घटने से मूत्रोत्पत्ति कम हो जाती है। शरीर पर सूजन आ जाती है। एक-चौथाई कप मूली के पत्तों का रस सुबह खाली पेट व शाम को ४ बजे पियें। पत्तों की सब्जी (बिना नमक डाले) बनाकर खायें। इससे पेशाब खुलकर आने में मदद मिलेगी।

पीलिया : मूली के पत्तों के रस में मिश्री मिलाकर पीना लाभदायी है।

कब्ज : मूली के पत्ते काटकर नींबू निचोड़ के खाने से पेट साफ होता है व स्फूर्ति रहती है। ❑

जानलेवा बीमारी से मिली मुक्ति

फरवरी २०११ में मुझे पीलिया, हेपेटाइटिस-बी व टायफाइड होने पर ७ दिन अस्पताल में रखा गया और दवाइयाँ सतत लेने की हिदायत देकर छुट्टी दी गयी परंतु पीलिया बढ़ता ही जा रहा था।

१८ मार्च २०११ को मेरी तबीयत ज्यादा खराब हो गयी परंतु मैंने गुरुमंत्र का मानसिक जप नहीं छोड़ा । बापूजी से प्रार्थना किये जा रहा था कि 'हे सद्गुरुदेव ! आप ही मेरे पिता-माता हो, रक्षक हो, आप ही भगवान हो, मेरी रक्षा कीजिये ।'

बापूजी ने मेरी प्रार्थना सुन ली । रात को सपने में आकर मेरे सिर पर एक पट्टी बाँधी और स्नेह से हाथ घुमाते हुए बोले : ''घबराओ मत ! एक महीने में ठीक हो जाओगे ।'' कोई तरतीव्र प्रारब्ध होगा जो मात्र एक माह में ही कट गया । उसके बाद मेरे स्वास्थ्य में निरंतर सुधार होता गया । खून की जाँच करायी तो पता चला कि पीलिया व हेपेटाइटिस-बी दूर हो गया है । आज मैं बिल्कुल ठीक हूँ। गरीबनिवाज बापूजी ने जानलेवा बीमारी से बचाकर मुझे जीवनदान दिया है । दुःखियों के दुःख दूर करनेवाले पूज्य सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में खूब-खूब प्रणाम ! **– अम्बरीष तिवारी, नलखेड़ा (म.प्र.)**

मो. : ९६६९९०२८६० ❑

थी मौत की तैयारी, जान बची, बना सेवाधारी

सन् १९९२ से ९८ तक मैं गम्भीर रूप से बीमार रहा, जिससे मेरा वजन मात्र २५ किलो रह गया । कई जगह इलाज कराया, ८ लाख रुपये खर्च हो गये । अंत में डॉक्टरों ने जवाब दे दिया । मैं ६ साल तक एक ही जगह पड़ा रहा । मैं हर तरफ से निराश हो गया था । मैंने पूज्य बापूजी का सत्साहित्य पढ़ा । पढ़ते-पढ़ते एक दिन मेरी आँखों से आँसू आ गये । मैंने बापूजी से आर्तभाव से प्रार्थना की : ''हे गुरुदेव ! अब बस एक आपका ही सहारा है, मुझे बचा लीजिये ।'' उसी रात परम दयालु बापूजी सपने में आये । मैंने दंडवत् प्रणाम किया तो आशीर्वाद देते हुए बोले : ''क्यों घबराता है ! चल उठ, खड़ा हो जा !''

चार दिन बाद मैंने भोपाल आश्रम में बड़दादा की परिक्रमा करके प्रसाद के रूप में मिट्टी ली । नौ माह बाद मेरा वजन ६० किलो हो गया । बापूजी के कृपा-प्रसाद से आज मैं एकदम ठीक हूँ । मैंने पूज्यश्री से मंत्रदीक्षा ले ली और २०० लोगों को दीक्षा दिलायी । अब **'ऋषि प्रसाद'** के सदस्य बनाता हूँ तथा विद्यालयों में इसका निःशुल्क वितरण करता हूँ । मैं संकल्प करता हूँ कि जब तक मैं जीवित रहूँगा, तब तक **'ऋषि प्रसाद'** की सेवा करता ही रहूँगा । बापूजी से गुरुमंत्र की दीक्षा व कर्मयोग की शिक्षा पाकर मैं मृत्यु से अमरता की ओर चल पड़ा हूँ । नवजीवनदाता सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में खूब-खूब नमन !

– मथुरालाल नागर, राजगढ़ (म.प्र.)

मो. : ७८९८४४१८८० ❑

अनंत गुना फलदायी सद्गुरु-पूजा

हम मूर्ति की पूजा करते हैं तो हमें पूजा की सामग्री और हमारी भावना के अनुसार लाभ होता है । बिल्वपत्र, फूल, चंदन आदि पूजा की सामग्री की सुवास से लाभ होता है और भाव से हमें पुण्यलाभ होता है लेकिन मूर्ति कुछ बोलती नहीं है, संकल्प नहीं करती । गुरुजी संकल्प से, दृष्टि से, वाणी से भी कृपा बरसाते हैं । उनको छूकर आनेवाली हवा से भी उनका ओज, स्नेह, पुण्य-प्रभाव बरसता है । इसलिए सद्गुरु की पूजा अनंत गुना फल देती है । - पूज्य बापूजी

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

गंगा-तट पर बसे **मिर्जापुर (उ.प्र.)** के श्रद्धालुओं की लम्बे समय की प्रार्थना फलित हुई। बापूजी ने यहाँ **२५ (शाम) व २६ अप्रैल (सुबह)** को सत्संग का अमृतपान कराया। भविष्य को रसमय बनाने की युक्ति बताते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''जो बीत गयी सो बीत गयी,
तकदीर का शिकवा कौन करे।
जो तीर कमान से निकल गया,
उस तीर का पीछा कौन करे॥
क्यों करे, कब तक करे ?

भविष्य तो अभी है नहीं, वर्तमान में आनंदित रहें, मस्ती में रहें तो भविष्य भी अच्छा गुजरेगा। जैसे जलेबी कड़ाही में से घूमकर आती है तो मीठी हो जाती है न ! ऐसे ही वर्तमान रसमय होगा तो भविष्य रसमय हो जायेगा और भूत तो चला गया।''

२६ अप्रैल (दोप.) गोपीगंज, संत रविदास नगर (उ.प्र.) में पहली बार सत्संग का आयोजन हुआ। यहाँ के भक्तों को बापूजी ने 'गोप-गोपी' कहकर सम्बोधित किया तो वे गद्गद हो उठे। पूज्यश्री ने अपनी अनुभवसम्पन्न वाणी में निश्चिंत जीवन का मार्ग बताते हुए कहा : ''हो-होकर क्या हो जायेगा ? बहुत-बहुत तो मर जायेंगे, तो अमर कौन रहा है ? भगवान भी अपना शरीर सदा नहीं रखते तो हम कैसे रखेंगे ? आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य है, चिंता किस बात की ! आज से आप प्रण करो कि हम निश्चिंत होंगे, निर्भय होंगे, रसमय होंगे।''

२७ अप्रैल को कुम्भ नगरी **प्रयागराज (उ.प्र.)** में अलौकिक मनोवैज्ञानिक बापूजी ने त्रिवेणी संगम पर ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी बहाते हुए कहा : ''आप अपने मन को विकारों में और गलत रास्ते में जाने से रोकेंगे तो वह नहीं रुकेगा, उसे निर्विकार और सही रास्ते में लगाओगे तो गलत में जाने का समय मिलेगा ही नहीं।'' प्रयागराज के भक्तों ने लोकलाड़ले पूज्यश्री को आगामी महाकुम्भ - २०१३ हेतु भावभरा आमंत्रण दिया।

२७ अप्रैल को पूज्यश्री ने प्रतापगढ़ के नवनिर्मित आश्रम में रात्रि-विश्राम किया और श्रद्धालुओं को दर्शन-सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ।

२८ अप्रैल का सत्संग **सुल्तानपुर (उ.प्र.)** के नाम रहा। वृक्षों एवं लताओं के सौंदर्य के कारण यह क्षेत्र प्राचीनकाल में **सुलतापुर** कहा जाता था। पूज्य बापूजी ने सुलतापुर से सुल्तानपुर बनने के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा : ''यह पहले सुलतापुर था, फिर मुसलमानों ने सुलतापुर को सुल्तानपुर कर दिया। सुलतापुर में अभी भी सुलता की सुगंध आ रही है।'' यहाँ विशाल जनसमुदाय के साथ ही प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी लोकसंत पूज्य बापूजी का भव्य स्वागत कर आशीर्वाद प्राप्त किया।

२९ अप्रैल को **रायबरेली (उ.प्र.)** में बापूजी ने सत्संग की महिमा बताते हुए कहा : ''सत्संग का जितना आदर करोगे आप उतने आदरणीय हो जाओगे। मैंने सत्संग का आदर किया तो मुझे पता है कि मुझे कितना फायदा हुआ है।''

३ मई को **वसई (पश्चिम), ठाणे** में पहली बार सत्संग हुआ। मायानगरी मुंबई व ठाणे जिले के श्रद्धालुओं ने इस सुवर्ण अवसर का खूब लाभ लिया।

४ मई (सुबह) का सत्र **बिलिया, जि. पाटण (गुज.)** के नाम रहा। कहते हैं, **'संतां के कारज प्रभु आप सँवारे।'** बिलिया के एक साधक परिवार के हृदय की पुकार को सुनकर सन् १९९८ में बापूजी के श्रीमुख से सहज में ही निकल पड़ा था कि 'तुम्हारे यहाँ भागवत-कथा होगी और पूर्णाहुति के लिए मैं आऊँगा।' ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्मवाक्य ने मूर्त रूप धारण किया और बिलिया में भागवत-कथा का आयोजन होकर उसकी पूर्णाहुति के अवसर पर बापूजी वहाँ पहुँचे। बिलिया के श्रद्धालुओं का उत्साह देखते ही बनता था। इसके बाद चला पूर्णिमा-दर्शन का सिलसिला :

तरुवर सरोवर संतजन चौथा बरसे मेह।
परमारथ के कारणे चारों धरिया देह॥

कहा जाता है कि वृक्ष, सरोवर, संतजन और बरसनेवाले मेघ का जन्म ही दूसरों के हित के लिए होता है। परंतु वृक्ष किसी विशेष ऋतु में ही फलते

हैं, सरोवर में भी जल कम होने की सम्भावना बनी रहती है, वर्षा भी कभी कम-ज्यादा हो सकती है लेकिन संतजन तो स्वयं के कष्ट की परवाह न करते हुए समाज पर अमाप कृपा बरसाते ही रहते हैं। पूनम-व्रतधारियों को यात्रा का कष्ट न उठाना पड़े इसलिए करुणावतार पूज्य बापूजी ने स्वयं शारीरिक कष्ट सहन करते हुए ५ मई को एक ही दिन चार-चार स्थानों - सूरत, अहमदाबाद, दिल्ली और हरिद्वार में पूनम-दर्शन प्रदान किया।

४ (शाम) व ५ मई (सुबह १० बजे तक) को **सूरत** में सत्संग हुआ। सूरतवासियों को संसार दुःखालय है या **'वासुदेवः सर्वम्'** है - यह बात समझाते हुए बापूजी ने कहा : ''ज्ञानदृष्टि से संसार आनंदमय है और भोगदृष्टि से संसार दुःखालय है। शरीर को 'मैं' माने और संसार से सुखी होना चाहे तो संसार उसके लिए दुःखालय है। आत्मा को 'मैं' माने और संसार का सदुपयोग करे तो संसार उसके लिए **'वासुदेवः सर्वम्'** है।''

५ मई (सुबह ११ से १२ बजे तक) को **अहमदाबाद** में कर्म-आसक्ति के त्याग का उपाय कर्म का त्याग नहीं अपितु कर्म तत्परता से करने में निहित है, इस बात पर प्रकाश डालते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''जिसको जो कर्तव्य मिले उसको वह तत्परता से नहीं निभाता तो करने का राग नहीं मिटता। करने का राग मिटे बिना भोगने का राग नहीं मिटता, सुख-दुःख का जाल नहीं कटता। इसलिए कर्तव्य-कर्म जिस समय जो हो तत्परता से करो और कर्तव्य-कर्म को लापरवाही से, राग-द्वेष से गंदा मत करो। ईश्वर की प्रसन्नता के लिए कर्तव्य-कर्म करो।''

५ मई (दोप. ३ से ५ तक) को **दिल्ली** के करोल बाग आश्रम में पूनम-दर्शन पर श्रद्धालुओं का सैलाब उमड़ पड़ा। पूज्यश्री ने सुख-दुःख से पार परमानंद को पाने की युक्ति बताते हुए कहा : ''संसार में सुखी होने की इच्छा छोड़ दो। 'यह पाकर, यह भोगकर हम सुखी हो जायेंगे...' नहीं बेटे ! इन चीजों का उपयोग करके, हरि से प्रीति करके, हरि का ज्ञान पाकर सुख और दुःख से पार हो के तुम परमानंद को पा सकते हो।''

प्रतिवर्ष आयोजित होनेवाला 'बुद्ध पूर्णिमा' का सत्संग व पूर्णिमा-दर्शन कार्यक्रम **६ से ९ मई, हरिद्वार** में पूर्व-निर्धारित तारीख से पहले **५ मई (शाम)** से ही शुरू हो गया। पतितपावनी गंगा के तट पर नारद जयंती की पूर्णिमा पर लाखों की संख्या में उपस्थित जनमेदनी को संसारी श्रम से भगवद्श्रम की ओर और भगवद्श्रम से फिर भगवद्-विश्रांति की ओर कदम बढ़ाने की सुंदर प्रेरणा देते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''हमें दुनिया के श्रम की आदत है तो कीर्तन आदि करके दुनिया का श्रम हटाकर भगवद्श्रम की तरफ जाते हैं। भगवद्श्रम के बाद भगवद्-विश्रांति में आयें। सतत श्रम नहीं कर सकते। विश्राम के पहले जो है, विश्राम के समय भी जो है, विश्राम के बाद भी जो है उस मधुमय, साक्षी, चैतन्य आत्मा में विश्राम पायें।'' ❑

* पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम *

दिनांक	स्थान	सत्संग-स्थल	सम्पर्क
३१ मई (सुबह ८ बजे से)	बोईसर (मुंबई)	TZA ट्रस्ट ग्राउंड, SBI के सामने, तारापुर रोड	९३७१७१०३४९ ९४२२०७३८०७
३१ मई (दोपहर ३-३० बजे से)	धरमपुर (गुज.) (सत्संग व भंडारा)	SMSM हाईस्कूल मैदान, तीन दरवाजा	९८९८९ ९१६१४ ९८२५१ ९९९३३
१ व २ जून	वलसाड़ (गुज.) (पूर्णिमा-दर्शन व सत्संग)	शांतिनगर के सामने, तीथल रोड	९४२६८२१३७४ ९८२५०४७९१२
३ जून	ठाणे (ऐरोली वेस्ट) (पूर्णिमा-दर्शन व सत्संग)	MIDC ग्राउंड, पटनी के सामने, ठाणे-बेलापुर रोड	९८२०४५८८०७ ८६५२०७७४०५
४ जून	नई दिल्ली (पूर्णिमा-दर्शन व सत्संग)	रामलीला मैदान, अजमेरी गेट	९८११०४१३४२ ९८१०००१३०५

बढ़ती आस्था... उमड़ता जनसैलाब !

रायबरेली (उ.प्र.)

वसई, ठाणे (महा.)

सन् १९९८ में बिलिया (गुज.) के एक साधक परिवार की श्रद्धा के फलस्वरूप बापूजी के श्रीमुख से निकल पड़ा था कि 'तुम्हारे यहाँ भागवत-कथा होगी और उसकी पूर्णाहुति के लिए मैं आऊँगा।' और यह है ब्रह्मज्ञानी के ब्रह्मवाक्य का मूर्त रूप !